श्री अभय जैन ग्रन्थमाला पुष्प १५

बीकानेर जैन लेख संग्रह

[बीकानेर राज्य के २६१७, जेसलमेर के १७१ अप्रकाशित लेख ; विस्तृत भूमिकादि सहित]

प्राक्कथन—

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल

संग्राहक व संपादक—

अगरचन्द नाहटा, भँवरलाल नाहटा

प्रकाशक—

नाहटा ब्रदर्स

४, जगमोहन मल्लिक लेन

कलकत्ता-७

वीराब्द २४८२] प्रथमावृत्ति १००० [मूल्य १०)

प्रकाशक—
नाहटा ब्रदर्स,
४, जगमोहन मल्लिक लेन,
कलकत्ता-७

मुद्रक—
सुराना प्रिन्टिङ्ग वर्क्स,
४०२, अपर चितपुर रोड,
कलकत्ता-७
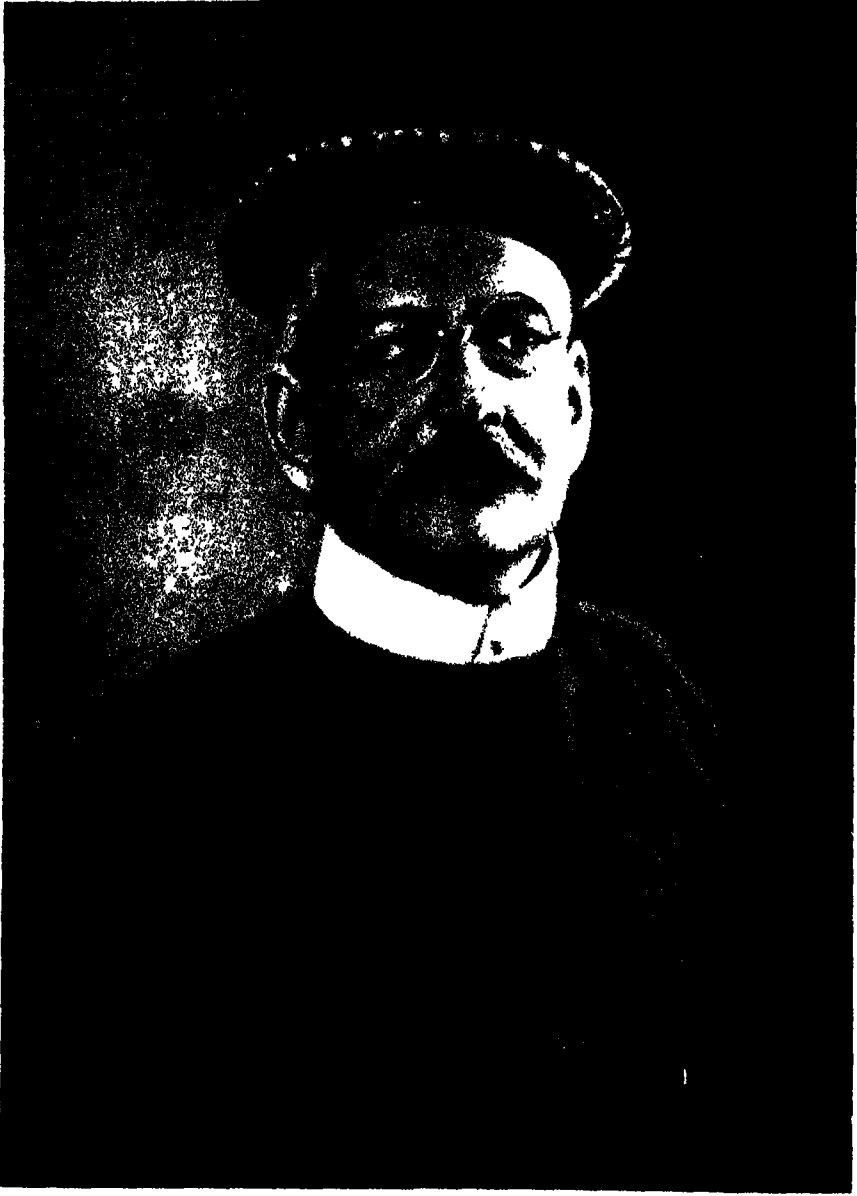
स्वर्गीय श्री पूरणचन्द्रजी नाहर

जन्म १५ मई १८७५ ई० स्वर्ग ३१ मई १९३६ ई०

समर्पण

जिन्होंने अपना तन-मन-धन और सारा जीवन जैन पुरातत्त्व, साहित्य,
संस्कृति और कला के संग्रह, संरक्षण, उन्नयन और प्रकाशन में
लगा दिया और जिनके आन्तरिक प्रेम, सहयोग और सौहार्द
ने हमें निरन्तर सरस्वती-उपासना की सत्प्रेरणा दी उन्हीं
श्रद्धेय स्वनामधन्य स्वर्गीय बाबू पूरणचन्दजी
नाहर की पवित्र स्मृति में सादर समर्पित

अगरचन्द नाहटा
भँवरलाल नाहटा

श्री अभय जैन ग्रन्थमाला के बहुमूल्य प्रकाशन

१ अभयरत्नसार (पंच प्रतिक्रमण, स्तोत्र, स्तवनादिका वृहत्संग्रह) अलभ्य
२ पूजा संग्रह (१६ पूजाएँ, चौबीसी, स्तवनोंका संग्रह) ”
३ सती मृगावती ले० भंवरलाल नाहटा ”
४ विधवा कर्त्तव्य ले० अगरचन्द नाहटा ”
५ स्नात्र-पूजादि संग्रह (दादाजी की अष्टप्रकारी, दशत्रिक स्तवन सह) ”
६ जिनराज भक्ति आदर्श (जिन मन्दिरकी आसातना निवारणार्थ विविध लेखों व मूर्त्तिपूजा सिद्धि लेख सह) ”
* ७ युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि ले० अगरचन्द भंवरलाल नाहटा ”
८ ऐतिहासिक जैन काव्य संग्रह सं० अगरचन्द भंवरलाल नाहटा ५।)
* ९ दादाश्री जिनकुशलसूरि ” अलभ्य
*१० मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि ” अलभ्य
*११ युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि ” १)
१२ सघपति सोमजी शाह ले० श्री ताजमलजी बोथरा अलभ्य
१३ जैन दार्शनिक संस्कृति पर एक विहगम दृष्टि ले० श्री शुभकरणसिंह ।।।)
१४ ज्ञानसार ग्रन्थावली सं० अगरचन्द भवरलाल नाहटा प्रेसमें
१५ बीकानेर जैन लेख संग्रह ” १०)
१६ समयसुन्दर कृति कुसुमाञ्जली ” प्रेसमें

राजस्थानी साहित्य परिषद्के प्रकाशन

१ राजस्थानी कहावतां भाग १ सजिल्द ले० नरोत्तमदास स्वामी, मुरलीधर व्यास ३)
२ राजस्थानी कहावतां भाग २ सजिल्द ” ३)
३ राजस्थानी भाग १ सं० नरोत्तमदास स्वामी २॥)
४ राजस्थानी भाग २ ” २॥)
५ बरसगांठ (राजस्थानी भाषाकी आधुनिक कहानियाँ) ले० मुरलीधर व्यास १॥)

श्रीमद् देवचंद्रग्रन्थमाला

१ श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली (चौबीसी, बीसी, संक्षिप्त जीवन चरित्र सह) ।)

प्रस्तुत ग्रन्थ सम्पादकोंके अन्यत्र प्रकाशित ग्रन्थ

१-२ राजस्थान में हिन्दीके हस्तलिखित ग्रन्थोंकी खोज भाग २—४
सं० अगरचन्द नाहटा प्र० राजस्थान विश्वविद्यापीठ, उदयपुर
३ जसवन्त उद्योत ” अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर
४ क्यामखां रासो अगरचन्द भंवरलाल नाहटा राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर, जयपुर
५ राजगृह ले० भंवरलाल नाहटा जैन सभा, कलकत्ता

कई ग्रन्थ सम्पादन किये हुए प्रकाशनार्थ तैय्यार है एवं १४० सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित ११६१ लेखोंकी सूची राजस्थान भारती वर्ष ४ अंक २-३ में छप चुकी है ।

* इनका गूजराती अनुवाद श्री जिनदत्तसूरि ज्ञान भंडार ठि० महावीर स्वामीका मंदिर पायधुनी बम्बईसे प्रकाशित हुआ है एवं संस्कृत पद्यानुवाद उपाध्याय श्रीलब्धिमुनिजी महाराजने किया है ।

सूचनिका

प्रस्तावना परिशिष्ट

बीकानेर जैन लेख संग्रह

परिशिष्ट

वक्तव्य

इतिहास मानव जीवन का एक प्रेरणा सूत्र है जिसके द्वारा मनुष्य को भूतकालीन अनेक तथ्यों की जानकारी मिलने के साथ साथ महान् प्रेरणा भी मिलती है। सत्य की जिज्ञासा मनुष्य की सबसे बड़ी जिज्ञासा है। इतिहास सत्य को प्रकाश में लाने का एक विशिष्ट साधन है। इ-ति-हा-स अर्थात् ऐसा ही था इससे भूतकालीन तथ्यों का निर्णय होता है।

इतिहास के साधनों में सबसे प्रामाणिक साधन शिलालेख, मूर्तिलेख, ताम्रपत्र, सिक्के, ग्रन्थों की रचना व लेखन प्रशस्तियें, भ्रमण वृतान्त, चरित्र, वंशावलियें, पट्टावलियें आदि अनेक हैं उनमें शिलालेख से ग्रन्थ प्रशस्तियों तक के साधन अधिक प्रामाणिक माने जाते हैं क्योंकि एक तो वे घटना के समकालीन लिखे होते हैं दूसरे उनमें परिवर्तन करने की गुँजाइश नहीं रहती है और वे बहुत लम्बे समय तक टिकते भी हैं। भारत का प्राचीन इतिहास पुराणों आदि धार्मिक ग्रन्थों के रूपमें भले ही लिखा गया हो पर जिस संशोधनात्मक पद्धति से लिखे गये ग्रंथों को विद्वान लोग आज इतिहास मानते हैं वैसे लिखे लिखाये पुराने भारतीय इतिहास नहीं मिलते। ऐतिहासिक साधनों की कमी नहीं है पर ऐतिहासिक दृष्टि से उनमें से तथ्यग्रहण करने की वृत्ति की कमी है। भारत के प्राचीनतम इतिहास के साधन पुरातत्व के रूप में हैं वे खुदाई के द्वारा भूगर्भ से प्राप्त हुए हैं। मोहनजोदाड़ो एवं हड़प्पा आदि में प्राप्त वस्तुएँ प्राचीन भारत के सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। हर वस्तु अपने समय से प्रभावित होने से उस समय की अनेक बातों का प्रतिनिधित्व करती है। साहित्य में भी समकालीन समाज का प्रतिनिधित्व रहता है पर उसमें एक तो अतिरंजना और पीछे से होनेवाले सेलभेल व परिवर्तन की सभावना अधिक रहने से उसकी प्रामाणिकता का नम्बर दूसरा है।

हमारे वेद, पुराण, आगम आदि ग्रन्थ अपने समय का इतिहास प्रकट करते हैं पर उनमें प्रयुक्त रूपकों व अलंकारों से इतिहास दब जाता है जब कि भूगर्भ से प्राप्त साधन बड़े सीधे रूप में तत्कालीन इतिहास को व्यक्त करते हैं यद्यपि उनके काल निर्णय की समस्या अवश्य ही कठिन होती है अत: काल निर्धारण में बड़ी सावधानी की आवश्यकता है अन्यथा एक तथ्य के काल निर्धारण में गड़बड़ी हुई तो उसके आधार से निकाले गये सारे तथ्य भ्रामक एवं गलत हो जावेंगे।

भूगर्भ से प्राप्त वस्तुओं के बाद ऐतिहासिक साधनों में प्राचीन शिलालेख, मूर्तियें एवं सिक्कों का स्थान है। ताम्रपत्र इतने प्राचीन नहीं मिलते। कुछ मूर्तियें व स्थापत्य अवश्य प्राप्त हैं।

शिलालेखों के काल निर्धारण में उसकी लिपी और उसमें निर्दिष्ट घटनायें व व्यक्तियों के नाम बड़े सहायक होते हैं। अद्यावधि प्राप्त समस्त शिलालेखों में अजमेर म्यूजियममें सुरक्षित "वीरात् ८४ वर्ष बाद" संवतोल्लेखवाला जैनलेख सबसे प्राचीन है। ओझाजी ने उसकी लिपि अशोक के शिलालेखों से भी पुरानी मानी है इसके बाद सम्राट अशोक के धर्म विजय सम्बन्धी अभिलेख भारतके अनेक स्थानोंमें मिले हैं। जैन लेखों में खारवेल का उदयगिरि खंडगिरिवाला शिलालेख बड़ा ही महत्त्वपूर्ण है इसमें श्री आदिनाथ की एक जैन मूर्त्ति नंद राजा के ले जाने और उसे खारवेल द्वारा वापिस लाने का उल्लेख भी पाया जाता है। इससे जैन मूर्त्तियों की प्राचीनताका पता चलता है। पर अभी तक प्राप्त जैन मूर्त्तियोंमें सबसे प्राचीन पटना म्यूजियम वाली मस्तकविहीन जिन मूर्त्ति शायद सबसे प्राचीन है जो मौर्यकाल की है यद्यपि उसमें कोई लेख नहीं है। पर उसकी चमक उसी समय का है। इसके बाद मथुरा के जैन पुरातत्वका महत्व बहुत ही अधिक है उसमें कुशाणकाल के कुछ शिलालेख भी प्राप्त हुए हैं जिनमें सबसे पुराना प्रथम शताब्दी का है। मथुरा के जैन लेखों में जिन कुल गण आदि के नाम है उनका उल्लेख कल्पसूत्र की स्थविरावली में प्राप्त होनेसे वे लेख श्वेताम्बर सम्प्रदायके सिद्ध हैं। कंकाली टीले में प्राप्त अनेक मूर्त्तियों व शिलालेखों से मथुरा का कई शताब्दियों तक जैन धर्म का केन्द्र रहना सिद्ध है।

गुप्तकाल भारत का स्वर्ण युग है। उस समय साहित्य संस्कृति कलाका चरमोत्कर्ष हुआ। गुप्त सम्राट यद्यपि वैदिक धर्मी थे पर वे सब धर्मों का आदर करनेवाले थे उस समय की एक मूर्त्ति मध्यप्रदेश के उदयगिरि में गुप्त संवत् के उल्लेख वाली प्राप्त हुई हैं। वैसे उस समय धातु की जैन मूर्त्तियों का प्रचलन हो गया था और सातवीं शताब्दी व उसके कुछ पूर्ववर्त्ती जैन धातु प्रतिमायें आंकोटा (बड़ौदा) आदि से प्राप्त हुई हैं। राजस्थान के वसंतगढ़ में प्राप्त सुन्दर धातु मूर्त्तियां जो अभी पिंडवाड़े के जैन मंदिर में हैं, राजस्थान की सबसे प्राचीन जैन प्रतिमाएँ हैं। आठवीं शताब्दी की इन प्रतिमाओं के लेख मुनि कल्याणविजयजी ने नागरी प्रचारिणी पत्रिका में प्रकाशित किये थे।

दक्षिण भारत में जैन धर्म का प्रचार श्रुतकेवली आचार्य भद्रबाहू से हुआ माना जाता है पर उधर से सातवीं शताब्दी के पहले का कोई जैन लेख प्राप्त नहीं हुआ। दक्षिण के दिगम्बर जैन लेखों का संग्रह डा० हीरालाल जैन संपादित "जैन शिलालेख संग्रह" प्रथम भाग सन् १९२८ ई० में प्रकाशित हुआ।

श्वे० जैन शिलालेखों की कुछ नकलों के पत्र यद्यपि जैन भण्डारों में प्राप्त है पर आधुनिक ढंग से शिलालेखों के संग्रहका काम गत पचास वर्षोंमें हुआ। सन् १९०८ में पैरिसके डा० ए० गेरीयेनटने जैन लेखां सम्बन्धी Repertoire Depigrephi Jaine नामक ग्रन्थ फ्रान्सीसी भाषामें प्रकाशित किया इसमें ई० पूर्व सन् २४२ से लेकर ईस्वी सन् १८८६ तक के ८५० लेखोंका पृथक्करण किया गया जो कि सन् १९०७ तक प्रकाशित हुए थे उन्होंने उन लेखों का संक्षिप्तसार,

कौन सा लेख किस विद्वान ने कहाँ प्रकाशित किया—इसका विवरण दिया है। इन लेखों में श्वे० तथा दिगम्बर दोनों सम्प्रदायों के लेख हैं।

जैन लेख संग्रह भाग २ की भूमिका में स्वर्गीय श्रीपूरणचन्द नाहर ने लिखा था कि सन् १८६४-६५ से मुझे ऐतिहासिक दृष्टि से जैन लेखों के संग्रह करने की इच्छा हुई थी। तबसे इस संग्रहकार्य में तन, मन एवं धन लगाने में त्रुटि नहीं रखी। उनका जैन लेख संग्रह प्राथमिक वक्तव्य के अनुसार सन् १९१५ में तैयार हुआ जैनों द्वारा संगृहीत एवं प्रकाशित मूर्ति लेखों का यह सबसे पहला संग्रह है इसमें एक हजार लेख छपे हैं जो बंगाल, बिहार, उत्तरप्रदेश, राजस्थान, आसाम, काठियावाड़ आदि अनेक स्थानों के हैं। इसके पश्चात् सन् १९१७ में मुनि जिनविजय जी ने सुप्रसिद्ध खारवेल का शिलालेख बड़े महत्व की जानकारी के साथ "प्राचीन जैन लेख संग्रह" के नाम से प्रकाशित किया। इसके अन्त में दिये गये विज्ञापनके अनुसार इसके द्वितीय भागमें मथुराके जैन लेखोंको विस्तृत टीकाके साथ प्रकाशित करनेका आयोजन था जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ और विज्ञापित तीसरे भाग को दूसरे भाग के रूप में सन् १९२१ में प्रकाशित किया गया इसका सम्पादन बड़ा विद्वत्तापूर्ण और श्रमपूर्वक हुआ है। इसमें शत्रुञ्जय, आबू, गिरनार आदि अनेक स्थानों के ५५७ लेख छपे हैं जिनका अवलोकन ३४४ पृष्ठों में लिखा गया है इसीसे इस ग्रन्थ का महत्व व इसके लिये किये गये परिश्रम की जानकारी मिल जाती है। नाहरजी का जैन लेख संग्रह दूसरा भाग सन् १९२७ में छपा जिसमें नं० १००१ से २१११ तक के लेख हैं। बीकानेर के लेख नं० १३३० से १३६२ तक के हैं जिनमें मोरखाणा, चुरू के लेख भी सम्मिलित है। नाहर जी के इन दोनों लेख संग्रहों में मूल लेख ही प्रकाशित हुए हैं विवेचन कुछ भी नहीं।

इसी बीच आचार्य बुद्धिसागरसूरिजीने जैन धातु प्रतिमा लेख संग्रह २ भाग प्रकाशित किये जिनमें पहला भाग सन् १९१७ व दूसरा सन् १९२४ में अध्यात्मज्ञान प्रसारक मण्डल पादराकी ओर से प्रकाशित हुआ। प्रथम भाग में १५२३ लेख और दूसरे में ११५० लेख। उन्होंने नाहरजी की भाँति ऐतिहासिक अनुक्रमणिका देनेके साथ प्रथम भाग की प्रस्तावना विस्तारसे दी। इनके पश्चात् आचार्य विजयधर्मसूरिजी के संगृहीत पाँचसौ लेखों का संग्रह संवतानुक्रम से संपादित प्राचीन जैन लेख संग्रह के रूप में सन् १९२९ में प्रकाशित हुआ इसमें संवत् ११२३ से १५४७ तक के लेख हैं। प्रस्तावना में लिखा गया है कि कई हजार लेखों का संग्रह किया गया है उनके पाँचसौ लेखों के कई भाग निकालने की योजना है पर खेद है कि २९ वर्ष हो जानेपर भी वे हजारों लेख अभी तक अप्रकाशित पड़े हैं।

इसी समय (सन् १९२९) में नाहरजी का जैन लेख संग्रह तीसरा भाग "जैसलमेर" के महत्वपूर्ण शिलालेखोंका निकला जिसमें लेखाङ्क २११२ से २५८० तकके लेख हैं इसकी भूमिका बहुत ज्ञानवर्धक है। फोटो भी बहुत अधिक संख्या में व अच्छे दिये हैं। वास्तव में नाहर जी ने इस भाग को तैयार करने में बड़ा श्रम किया है।

अभीतक जैन लेख संग्रहों की चर्चा की गई है वे सब भिन्न २ स्थानों के लेखों के संग्रह हैं। नाहरजी का तीसरा भाग भी केवल जैसलमेर व उसके निकटवर्ती स्थानों का है। पर उसमें भी वहाँ के समस्त लेख नहीं दिये गये। एक स्थान के समस्त लेखों का पूरा संग्रह करने का कार्य स्वर्गीय मुनि जयन्तविजय जी ने किया उन्होंने आबू के ६६४ लेखों का संग्रह "अर्बुद प्राचीन लेख संदोह" के नाम से संवत् १९९४ में प्रकाशित किया। इसमें आपने उन लेखों का अनुवाद आवश्यक जानकारी व टिप्पणों के साथ दिया जो बड़ा श्रमपूर्ण व महत्व का कार्य है। आपने "अर्बुदाचल प्रदिक्षणा लेख संग्रह" भी इसी ढंगसे संवत् २००५ में प्रकाशित किया है जिसमें आबू प्रदेश के ९९ गाँवों के ६४५ लेख हैं। संखेश्वर आदि कई अन्य स्थानों के इतिहास व लेख संग्रह आपने निकाले जो उन उन स्थानों की जानकारी के लिये बड़े काम के हैं। इसी प्रकार श्रीविजयेन्द्रसूरिजी ने "देवकुल पाटक" पुस्तिका में वहाँ के लेख आवश्यक जानकारी के साथ दिये हैं।

आचार्य विजययतीन्द्रसूरिजी ने "यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन" के चार भागों में बहुत से स्थानों के विवरण व तीर्थ यात्रा वर्णन देने के साथ कुछ लेख भी दिये हैं उनके संगृहीत ३७४ लेखों का एक संग्रह दौलतसिंह लोढ़ा संपादित श्री यतीन्द्र साहित्य सदन से सन् १९५१ में प्रकाशित हुआ। इसमें लेखों के साथ हिन्दी अनुवाद भी छपा है। इससे एक वर्ष पूर्व साहित्यालंकार मुनि कान्तिसागर जी संगृहीत ३६९ लेखों का संवतानुक्रम से संग्रह "जैन-धातु प्रतिमा लेख" प्रथम भाग के नाम से जिनदत्तसूरि ज्ञानभण्डार सूरत से छपा। सं० १०८० से सं० १९५२ तक के इसमे लेख है परिशिष्ट में शत्रुञ्जय तीर्थ सम्बन्धित दैनिन्दनी भी छपी है।

हमारी प्रेरणा से उपाध्याय मुनि विनयसागरजी ने जैन लेखों का संग्रह किया था। वह संवतानुक्रम से १२०० लेखों का संग्रह प्रतिष्ठा लेख संग्रह के नाम से सन् १९५३ ई० में प्रकाशित हुआ जिसकी भूमिका डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने लिखी है इसकी प्रधान विशेषता श्रावक श्राविकाओं के नामों की तालिका की है। जो अभी तक किसी भी लेख संग्रह के साथ नहीं छपी।

श्वेताम्बर लेख संग्रह की चर्चा की गई, दिगम्बर समाज के लेख दक्षिण में ही अधिक संख्या में व महत्वके मिलते हैं वहाँके पांचसौ लेखों का संग्रह बहुत ही सुन्दर रूपमें १६२ पेजकी ज्ञानवर्धक भूमिका के साथ श्री नाथूरामजी प्रेमी ने सन १९२८ में प्रकाशन व सम्पादन डा० हीरालाल जैनने बड़ा ही महत्वपूर्ण किया। इसका दूसरा भाग सन् १९५२ में २४ वर्ष के बाद छपा इसमें ३०२ लेखों का विवरण है श्री प्रेमीजी के प्रयत्न से पं० विजयमूर्ति ने इसका संग्रह किया। दिगम्बर जैन लेख संग्रह सम्बन्धी ये दो ग्रन्थ ही उल्लेखनीय हैं।

छोटे संग्रहों में इतिहास प्रेमी श्री छोटेलालजी जैन ने संवत् १९७६ में जैन प्रतिमा यन्त्र लेख संग्रह के नाम से प्रकाशित किया जिसमें कलकत्ता के लेख हैं। दूसरा संग्रह श्री कामता-

प्रसाद जैन सम्पादित प्रतिमा लेख संग्रह है जिसमें मैनपुरी के लेख हैं। संवत् १९९४ में जैन सिद्धान्त भवन आरा से यह पुस्तिका निकली।

इस प्रकार यथाज्ञात प्रकाशित जैन लेख संग्रह ग्रंथों की जानकारी देकर अब प्रस्तुत संग्रह के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा रहा है।

"बीकानेर जैन लेख संग्रह" के तैयार होने का संक्षिप्त इतिहास बतलाते हुए—फिर इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डाला जायगा। जैसा कि पहले बतलाया गया है इस संग्रह से पूर्व नाहरजी के जैन लेख संग्रह भाग २ में बीकानेर राज्य के कुल ३२ लेख ही प्रकाशित हुए थे।

सं० १९८४ के माघ शुक्ला ५ को खरतरगच्छ के आचार्य परमगीतार्थ श्री जिनकृपा-चन्द्रसूरिजी का बीकानेर पधारना हुआ और हमारे पिताजी व बाबाजी के अनुरोध पर उनका चातुर्मास शिष्य मण्डली सहित हमारी ही कोटड़ी में हुआ। लगभग ३ वर्ष वे बीकानेर विराजे उनके निकट सम्पर्क से हमें दर्शन, अध्यात्म, साहित्य, इतिहास व कला में आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिली। विविध विषय के ज्यों-ज्यों ग्रन्थ देखते गये उन विषयों का ज्ञान बढ़ने के साथ उन क्षेत्रों में काम करने की जिज्ञासा भी प्रबल हो उठी। बीकानेर के जैन मन्दिरों के इतिहास लिखने की प्रेरणा भी स्वतः ही जगी और सब मन्दिरों के खास-खास लेखों का संग्रह कर इस सम्बन्ध में एक निबन्ध लिख डाला जो अंबाला से प्रकाशित होनेवाले पत्र "आत्मानन्द" में सन् १९३२ में दानमल शंकरदान नाहटा के नाम से प्रकाशित हुआ। बीकानेर के चिन्तामणिजी के गर्भगृह की मूर्तियाँ उसी समय बाहर निकाली गयी थी उसके बाद श्री हरिसागरसूरिजी के बीकानेर चातुर्मास के समय उन प्रतिमाओं को पुनः निकाला गया तब उन ११०० प्रतिमाओं के लेखों की नकल की गई। सूरिजी के पास उस समय एक पण्डित थे उनको उसकी प्रेस कापी करने के लिए कोपीयें दी गई पर उनकी असावधानी के कारण वे कापीयें व उनकी नकल नहीं मिली इस तरह १५-२० दिन का किया हुआ श्रम व्यर्थ गया। इसी बीच अन्य सब मन्दिरों के शिलालेख व मूर्त्तियों की नकल ले ली गई थी पर गर्भगृहस्थ उन मूर्त्तियों के लेखों के बिना वह कार्य अधूरा ही रहता था अतः कई वर्षोंके बाद पुनः प्रेरणा कर उन मूर्त्तियों को बाहर निकलवाया तब उनके लेख संग्रह का काम पूरा हो सका।

कलकत्ते की राजस्थान रिसर्च सोसाइटी की मुख पत्रिका "राजस्थानी" का सम्पादनकार्य स्वामीजी व हमारे जिम्मे पड़ा तो हमने चिन्तामणिजी के मन्दिर व गर्भगृहस्थ मूर्त्तियों का इतिहास देते हुए उनमेंसे चुनी हुई कुछ मूर्त्तियोंके संयुक्त फोटोके साथ संगृहीत लेखोंका प्रकाशन प्रारम्भ किया। इसका सम्पादन हम एक वर्ष तक ही कर सके अतः चारों अंकों में मूलनायक प्रतिमा के लेख के साथ गर्भगृहस्थ धातु प्रतिमाओं के सम्वतानुक्रम से सं० १४०० तक के १५६ लेख और अन्य गर्भगृह के २० लेख सन् १९३९-४० में प्रकाशित किये गये। उसके बाद बीकानेर राज्य के जिन मन्दिरों के लेख का कार्य बाकी रहा था उसको पूरा किया गया और सबकी प्रेस कापीयें तैयार हुई। बीकानेर के जैन इतिहास और समस्त राज्य के जैन मन्दिरों

उपाश्रयों, ज्ञानभंडारों आदि की जानकारी देने के लिये बहुत अन्वेषण और श्रम करना पड़ा। मन्दिरों से सम्बन्धित शताधिक स्तवनों आदि की प्रेसकापी की और उन समस्त सामग्री के आधार से बहुत ही ज्ञानवर्धक भूमिका लिखी गई जो इस ग्रन्थ में—ग्रन्थ के प्रारम्भ में पाठक पढ़ेंगे। लेख संग्रह बहुत बड़ा हो जाने के कारण उन स्तवनों की प्रेसकापी को इच्छा होते हुए भी इसके साथ प्रकाशित नहीं कर पाये। पर उनके ऐतिहासिक तथ्यों का उपयोग भूमिका में कर लिया गया है।

संवत् १९९९ में हम जैन ज्ञानभंडारों के अवलोकन व जैन मंदिरों के दर्शन के लिये जैसलमेर गये वहाँ स्व० हरिसागरसूरिजी के विराजने से हमें बड़ी अनुकूलता रही। २०-२५ दिन के प्रवास में हमने खूब डटकर काम किया। प्रातःकाल निपट कर महत्वपूर्ण हस्तलिखित प्रतियों की नकल करते फिर स्नान कर किले के जैन मन्दिरों में जाते पूजा करने के साथ-साथ नाहरजी के प्रकाशित जैन लेख संग्रह भा० ३ में प्रकाशित समस्त लेखों का मिलान करते और जो लेख उसमें नहीं छपे उनकी नकलें करते, वहाँ से आते ही भोजन करके ज्ञानभंडारों को खुलवाकर प्रतियों का निरीक्षण कर नोट्स लेते। नकल योग्य सामग्री को छांट कर साथ लाते, आते ही भोजन कर रात में उस लाई हुई सामग्री का नकल व नोट्स करते। इस तरह के व्यस्त कार्यक्रम में जैसलमेर के अप्रकाशित लेखों की भी नकलें कीं। इस लेख संग्रह में बीकानेर राज्य के समस्त लेख जो छप गये तो विचार हुआ कि जैसलमेर के अप्रकाशित लेख भी इसके साथ ही प्रकाशित कर दें तो वहाँ का काम भी पूरा हो जाय। प्रारम्भ से ही हमारी यह योजना रही है कि जहाँ का भी काम हाथ में लिया जाय उसे जहाँ तक हो पूरा करके ही विश्राम लें जिससे हमें फिर कभी उस काम को पूरा करने की चिन्ता न रहे साथ-साथ किसी दूसरे व्यक्ति को भी फिर उस क्षेत्र में काम करने की चिन्ता न करनी पड़े। इसी दृष्टि से बीकानेर के साथ-साथ जैसलमेर का भी काम निपटा दिया गया है। दूसरी बात यह भी थी कि बीकानेर की भाँति जैसलमेर भी खरतरगच्छ का केन्द्र रहा है अतः इन दोनों स्थानों के समस्त लेखों के प्रकाशित हो जाने पर खरतरगच्छ के इतिहास लिखने में बड़ी सुविधा हो जावेगी।

इन लेखों के संग्रह में हमें अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है पर उसके फल-स्वरूप हमें विविध प्राचीन लिपियों के अभ्यास व मूर्त्तिकला व जैन इतिहास सम्बन्धी ज्ञान की भी अभिवृद्धि हुई अनेक शिलालेख व मूर्त्तिलेख ऐसे प्रकाशहीन अंधेरे में हैं जिन्हें पढ़ने में बहुत ही कठिनता हुई। मोमबत्तियें टॉर्चलाइट, छाप लेनेके साधन जुटाने पड़े फिर भी कहीं कहीं पूरी सफलता नहीं मिल सकी इसी प्रकार बहुत सी मूर्त्तियोंके लेख उन्हें पच्ची करते समय दब गये एवं कई प्रतिमाओं के लेख पृष्ठ भागमें उत्कीर्णित हैं उनको लेनेमें बहुत ही श्रम उठाना पड़ा और बहुत से लेख तो लिये भी न जा सके क्योंकि एक तो दीवार और मूर्त्ति के बीच में अन्तर नहीं था दूसरे मूर्त्तियों की पच्ची इतनी अधिक हो गई कि उनके लेखको

बिना मूर्त्तियोंको वहांसे निकाले पढ़ना संभव नहीं रहा। मूर्त्तियें हटाई नहीं जा सकी अतः उनको छोड़ देना पड़ा। कई शिलालेखों में पीछे से रंग भरा गया है उसमें असावधानीके कारण बहुत से लेख व अंक अस्पष्ट व गलत हो गये। कई शिलालेखों को बड़ी मेहनत से साफ करना पड़ा गुलाल आदि भरकर अस्पष्ट अक्षरों को पढ़ने का प्रयत्न किया गया कभी कभी एक लेख के लेने में घंटों बीत गये फिर भी सन्तोष न होने से कई बार उन्हें पढ़ने को शुद्ध करने को जाना पड़ा। बहुत से लेख खोदने में ठीक नहीं खुदे या अशुद्ध खुदे हैं। उन संदिग्ध या अस्पष्ट लेखों को यथासंभव ठीक से लेने के लिये बड़ी माथापच्ची की गई। इस प्रकार वर्षों के श्रम से जो बन पड़ा है, पाठकों के सन्मुख है। हम केवल ५ कक्षा तक पढ़े हुए हैं—न संस्कृत-प्राकृत भाषा का ज्ञान व न पुरानी लिपियों का ज्ञान इन सारी समस्याओं को हमें अपने श्रम व अनुभव से सुलझाने में कितना श्रम उठाना पड़ा है यह भुक्तभोगी ही जान सकता है। कार्य करने की प्रबल जिज्ञासा सच्ची लगन और श्रम से दुसाध्य काम भी सुसाध्य बन जाते हैं इसका थोड़ा परिचय देने के लिये ही यहां कुछ लिखा गया है।

प्रस्तुत लेख संग्रह में ६ वीं, १० वीं शताब्दी से लेकर आज तक के करीब ११ सौ वर्षों के लगभग ३००० लेख हैं। बीकानेर में सबसे प्राचीन मूर्त्ति श्री चिन्तामणिजी के मंदिर में ध्यानस्थ धातु मूर्त्ति है जो गुप्तकाल की मालूम देती है। इसके बाद सिरोही से सं० १६३३ में तुरसमखान द्वारा लूटी गई धातु मूर्त्तियों में जिसको अकबर के खजानेमें से सं० १६३६ में मंत्री कर्मचन्दजी बच्छावत की प्रेरणासे लाकर चिन्तामणिजी के भूमिग्रह में रखी गई थी। उनमें से ३-४ धातु मूर्त्तियां ६ वीं, १० वीं शताब्दी की लगती है जिनमें से दो में लेख भी है पर उनमें संवत् का उल्लेख नहीं लिपि से ही उनका समय निर्णय किया जा सकता है। संवतोल्लेखवाली प्रतिमा ११ वीं शताब्दी से मिली है १२ वीं शताब्दी के कुछ श्वेत पाषाण के परिकर व मूर्त्तियां जांगलू आदि से बीकानेर में लाई गई जो चिंतामणिजी व डागों के महावीरजी के मन्दिर में स्थापित है।

बीकानेर राज्य में ११ वीं शताब्दी की प्रतिमाएं रिणी (तारानगर) में मिली है एक शिलालेख नौहर में है और झंझूकी एक धातु प्रतिमा सं० १०२१ की है। १२ वीं १३ वीं शताब्दी के बाद की तो पर्याप्त मूर्त्तियां मिली हैं। १४ वीं से १६ वीं में धातु मूर्त्तियां बहुत ही अधिक बनी। १५ वीं शती से पाषाण प्रतिमा भी पर्याप्त संख्या में मिलने लगती हैं।

इस लेख संग्रहमें एक विशेष महत्त्वकी बात यह है कि इसमें श्मसानोंके लेख भी खूब लिये गये हैं। बीकानेर के दादाजी आदि के सैकड़ों चरणपादुकाओं व मूर्त्तियों के लेख अनेकों यति मुनि साध्वियों के स्वर्गवास काल की निश्चित सूचना देते हैं। जिनकी जानकारी के लिये अन्य कोई साधन नहीं है इसी प्रकार जैन सतियों के लेख तो अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। संभवतः अभी तक ओसवाल समाज के सती स्मारकों के लेखों के संग्रह का यह पहला और ठोस कदम है। जिसके लिये सारे श्मसान छान डाले गये हैं।

बीकानेर के जैन इतिहास से सम्बन्धित इतनी ज्ञानवर्धक ठोस भूमिका भी इस ग्रन्थ की दूसरी उल्लेखनीय विशेषता है। यद्यपि इसमें जैन स्थापत्य मूर्तिकला व चित्रकला पर कुछ विस्तार से प्रकाश डालने का विचार था पर भूमिका के बहुत बढ़ जाने व अवकाशाभाव से संक्षेप में ही निपटाना पड़ा है। इस सम्बन्ध में कभी स्वतन्त्र रूप से प्रकाश डालने क विचार है।

एक ही स्थान के ही नहीं पर राज्य भर के समस्त लेखों के एकीकरण का प्रयत्न भी इस ग्रन्थ की अन्य विशेषता है। अभी तक ऐसा प्रयत्न कुछ अंश में मुनि जयन्तविजयजी ने किया था। आबू के तो उन्होंने समस्त लेख लिये ही पर आबू प्रदेश के ९९ स्थानों के लेखों का संग्रह "अर्बुदाचलप्रदक्षिणा लेख संग्रह" प्रकाशित किया। संभवत: उन स्थानोंके सभी लेख उसमें आ गये हैं यदि कुछ छूट गये हैं तो भी हमें पता नहीं। आपने संखेश्वर आदि अन्य कई स्थानों से सम्बन्धित स्वतन्त्र पुस्तकें निकाली है जिनमें वहां के लेखों को भी दे दिया गया है।

हमारे इस संग्रह के तैयार हो जाने के बाद मुनिश्री विनयसागरजी को यह प्रेरणा दी थी कि वे जयपुर व कोटा राज्य के समस्त लेखों का संग्रह कर लें उन्होंने उसे प्रारम्भ किया कई स्थानों के लेख लिये भी पर वे उसे पूरा नहीं कर पाये जितने संगृहीत हो सके उन्हें संवतानुक्रम से संकलन कर दो भाग तैयार किये जिसमें से पहला छप चुका है।

आचार्य हरिसागरसूरिजी से भी हमने निवेदन किया था कि वे अपने विहार में समस्त स्थानों के समस्त प्रतिमा लेखों का संग्रह कर लें उन्होंने भी पूर्व देश व मारवाड़ आदि के बहुत से स्थानों के लेख लिये थे जो अभी अप्रकाशित अवस्था में है। मारवाड़ प्रदेश जैनधर्म का राजस्थान का सबसे बड़ा केन्द्र प्राचीन काल से रहा है इस प्रदेश मे पचासों प्राचीन ग्राम नगर है जहां जैन धर्म का बहुत अच्छा प्रभाव रहा वहां अनेकों विशाल एवं कलामय मंदिर थे और सैकड़ों जिन मूर्त्तियों के प्रतिष्ठित होने का उल्लेख खरतरगच्छ की युगप्रधान गुर्व्वावली आदि में मिलता है। उनमें से बहुत से मंदिर व मूर्त्तियां अब नष्ट हो चुकी हैं फिर भी मारवाड़ राज्य बहुत बड़ा है। यदि अवशिष्ट समस्त जैन मंदिर व मूर्त्तियोंके लेख लिये जांय तो अवश्य ही राजस्थान के जैन इतिहास पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ेगा।

सिरोही के जैन मन्दिरोंमें भी सैकड़ों प्रतिमायें हैं। वहां के लेखोंकी नकल श्री अचलमलजी मोदी ने लेनी प्रारम्भ की थी वह कार्य शीघ्र ही पूरा होकर प्रकाश में आना चाहिये।

मालवा के जैन लेखों का संग्रह अभी तक बहुत कम प्रकाश में आया है। नन्दलालजी लोढ़ा ने माण्डवगढ़ आदि के लेखों की नकलें की थी हमें भेजे हुए रजिस्टर की नकल हमारे संग्रह में भी है वह कार्य भी पूरा होकर प्रकाश में आना चाहिये। इसी प्रकार मेवाड़ में भी बहुतसे जैन मंदिर है उनमें से केसरियानाथजी आदि के कुछ लेख यतिश्री अनूपऋषिजी ने लिये थे पर वे बहुत अशुद्ध थे उन्हें शुद्ध रूपमें पूर्ण संग्रह कर प्रकाशित करना वांछनीय है उनके लिये हुए लेखों की नकलें भी हमारे संग्रह में है।

मारवाड़ के गोढ़वाड़ प्रदेशका राणकपुर तीर्थ बहुत ही कलापूर्ण एवं महत्व का है। वहाँ के समस्त प्रतिमा लेखों की नकलें पं० अंबालाल प्रेमचंदशाह ने की थी, उसकी नकल भी हमारे संग्रह में है। हरिसागरसूरिजी के अधिकांश लेखों की नकलें भी हमारे संग्रह में हैं। इसप्रकार अभी तक हजारों जैन प्रतिमा लेख, हमारे संग्रह में तथा अन्य व्यक्तियों के पास अप्रकाशित पड़े हैं। उन्हें और एपिग्राफिया इंडिका आदि ग्रन्थों में एवं फुटकर रूपसे कई जैन पत्रों में जो लेखछपे हैं उनका भी सग्रह होना चाहिये। आनन्दजी कल्याणजी पेढ़ी ने साराभाई नवाब को समस्त श्वे० जैन तीर्थों में वहाँ की प्रतिमाओं की नोंध व कलापूर्ण मंदिरों के फोटो व लेखों के संग्रह के लिए भेजा था। साराभाई ने भी बहुत से लेख लिये थे। उनमें से जैसलमेर के ही कुछ लेख प्रकाश में आये हैं, अवशेष सभी अप्रकाशित पड़े हैं।

गुजरात, सौराष्ट्र, कच्छ भी जैन धर्म का बहुत विशिष्ट प्रचार केन्द्र है। वहाँ हजारों जैन मुनि निरंतर विचरते हैं व हजारों लक्षाधिपति रहते हैं। उनको भी वहाँ के समस्त प्रतिमा लेखों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करना चाहिये। खेद है, शत्रुञ्जय जैसे तीर्थ और अहमदाबाद जैसे जैन नगर, जहाँ सैकड़ों छोटे बड़े जैन मन्दिर हैं, सैकड़ों साधु रहते हैं, हजारों समृद्ध जैन बसते हैं वहाँ के मन्दिर व मूर्त्तियों के लेख भी अभी तक पूरे संगृहित नहीं हो पाये। इसी प्रकार पाटन में भी शताधिक जैन मन्दिर हैं। गिरनार आदि प्राचीन जैन स्थान है उनके लेख भी शीघ्र ही संग्रहीत होकर प्रकाश में लाना चाहिए।

जैसा की पहले कहा गया है स्व०विजयधर्मसूरिजी ने हजारों प्रतिमा लेख लिये थे उनमें से केवल ५०० लेखही छपे हैं, बाकीके समस्त शीघ्र प्रकाशित होने चाहिये, इसी प्रकार एक और मुनि जिनका नाम हमें स्मरण नहीं, सुना है उन्होंने भी हजारों प्रतिमा लेख संग्रह किये हैं वे भी उनको प्रकाश में लावें। आगम-प्रभाकर मुनिराज श्री पुण्यविजयजी, मुनि दर्शनविजयजी त्रिपुटी, साहित्यप्रेमी मुनि कान्तिसागरजी, मुनिश्री जिनविजयजी व नाहरजी आदि के संग्रह में जो अप्रकाशित लेख हों उन्हें प्रकाशित किये जा सकें तो जैन इतिहास के लिये ही नहीं, अपितु भारत के इतिहास के लिये भी बड़ी महत्वपूर्ण बात होगी। इतिहास के इन महत्वपूर्ण साधनों की उपेक्षा राष्ट्र के लिये बड़ी ही अहितकर है।

इन लेखों में इतनी विविध एतिहासिक सामग्री भरी पड़ी है कि उन सब बातों के अध्ययन के लिये सैकड़ों व्यक्तियों की जीवन साधना आवश्यक है। इन लेखोंमें राजाओं, स्थानों गच्छों, आचार्यों, मुनियों, श्रावक-श्राविकाओं, जातियों और राजकीय, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक इतनी अधिक सामग्री भरी पड़ी है कि जिसका पार पाना कठिन है। इसी प्रकार इन मन्दिर व मूर्त्तियों से भारत की शिल्प, स्थापत्य, मूर्त्तिकला व चित्रकला आदि के विकास की जानकारी ही नहीं मिलती पर समय-समय पर लोकमानस में भक्ति का किस प्रकार विकास हुआ, नये-नये देवी देवता प्रकाश में आये, उपासना के केन्द्र बने, किस-किस समय भारत के किन-किन व्यक्तियों ने क्या-क्या महत्व के कार्य किये, उन समस्त गौरवशाली इति-

इस ग्रन्थ की प्रस्तावना माननीय डा० वासुदेवशरणजी अग्रवाल ने लिखनेकी कृपा की है इसके लिये हम हृदय से उनके आभारी हैं इस ग्रन्थ के प्रकाशन में श्री मूलचन्दजी नाहटा ने समस्त व्ययभार वहन किया। उनकी उदारता भी स्मरणीय है।

मन्दिरों के फोटो लेने में पहले श्री हीराचन्दजी कोठारी फिर श्री किशनचन्द बोथरा आदि का सहयोग मिला। सुजानगढ़ के फोटो श्री बछराजजी सिंघी से प्राप्त हुए। भांडासर व सरस्वती मूर्तिके कुछ ब्लाक सादूल राजस्थानी रिसर्च इन्स्टीच्यूट से प्राप्त हुए। कुछ अन्य जानकारी भी दूसरे व्यक्तियों से प्राप्त हुई। उन सब सहयोगियों को हम धन्यवाद देते हैं।

बीकानेर राज्य के समस्त दिगम्बर मन्दिरोंके भी लेख साथ ही देने का विचार था। पर सब स्थानोंके लेख संग्रह नहीं किये जा सके अतः बीकानेर व रिणी के दिगम्बर मन्दिरके लेख ही दे सके हैं। बीकानेर में एक नशियांजी भी कुछ वर्ष पूर्व निर्मित हुई है एवं राज्यमें चूरू, लालगढ़, सुजानगढ़ एवं दो तीन अन्य स्थानों में दि० जैन मन्दिर हैं, उनके लेख संग्रह करनेका प्रयत्न किया गया था पर सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार श्वेताम्बर जैन मन्दिर बिगा, सेरुणा, ददरेवा आदि के लेखों का संग्रह नहीं किया जा सका। इस कमी को फिर कभी पूरा किया जायगा।

इस ग्रन्थमें और भी बहुतसे चित्र देनेका विचार था पर कुछ तो लिए हुए चित्र भी अस्त-व्यस्त हो गए व कुछ अस्पष्ट आये। अतः उन्हें इच्छा होते हुए भी नहीं दिया जा सका।

ग्रन्थके परिशिष्ट में लेखों की संवतानुक्रमणिका, गच्छ, आचार्य, जाति, नगर नामादि की सूची दी गयी है। श्रावक श्राविकाओं के नामों की अनुक्रमणिका देने का विचार था पर उसे बहुत ही विस्तृत होते देखकर उस इच्छा को रोकना पड़ा। इसी प्रकार सम्वत् के साथ मिती और वार का भी उल्लेख देना प्रारंभ किया था पर उसे भी इसी कारण छोड़ देना पड़ा। इन सब बातों के निर्देश करने का आशय यही है कि हम इस ग्रन्थ को इच्छानुरूप उपस्थित नहीं कर पाये हैं और जो कमी रह गयीं हैं वे हमारे ध्यानमें हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ बहुत ही विलम्ब से प्रकाश में आ रहा है इसके अनेक कारण है। तीन चार प्रेसों में इसकी छपाई करानी पड़ी। अन्य कार्यों में व्यस्त रहना भी विशेष कारण रहा। करीब ७-८ वर्ष पूर्व इसकी पांडुलिपि तयार की। पहले राजस्थान प्रेस में ही एक फर्मा छपा जो वहीं पड़ा रहा, फिर सर्वोदय प्रेस तथा जनवाणी प्रेसमें काम करवाया। अन्तमें सुराना प्रेस में छपाया गया। इतने वर्षोंमें बहुतसे फर्मे खराब हो गये, कुछ कागज काले हो गये, परिस्थिति ऐसी ही रही। इसके लिये कोई अन्य चारा नहीं। हमारी विवशताओं की यह संक्षिप्त कहानी है।

हमारे इस ग्रन्थ का जैन एवं भारत के इतिहास निर्माण में यत्किंचित् भी उपयोग हुआ व अन्य प्रदेशों के जैन लेख संग्रह के तैयार करने की प्रेरणा मिली तो हम अपना श्रम सफल समझेंगे।

ऋषभदेव निर्वाण दिवस
माघकृष्णा १३
कलकत्ता

अगरचन्द नाहटा
भँवरलाल नाहटा

श्री मूलचंदजी नाहटा

श्री मूलचन्दजी नाहटा का जीवन परिचय

श्रीमूलचन्दजी नाहटा कलकत्ता के छत्तों के बाजार में एक प्रतिष्ठित व्यापारी होनेके साथ-साथ उदार, सरल, धर्मिष्ठ और निश्छल व्यक्ति हैं। साधारण परिवारमें जन्म लेकर अपनी योग्यताके बलपर संघर्षमय जीवन यापन करते हुए आप अपने पैरोंपर खड़े होकर उन्नत हुए, यही इनकी उल्लेखनीय विशेषता है। इन्होंने सं० १९५० में बीकानेरमें मार्गशीर्ष शुक्ला १ को श्री भैंसकरणजी नाहटा के घर जन्म लिया, इनकी माता का नाम छोटाबाई था। बाल्यकाल में हिन्दी व लेखा गणितादि की सामान्य शिक्षा प्राप्त करने के बाद सं० १९५८ में बाबाजी हीरालालजी के साथ कलकत्ता आये पर सं० १९५९ में पिताजी का स्वर्गवास होनेसे वापस बीकानेर चले गये। पिताजी की आर्थिक स्थिति कमजोर थी, उन्होंने सब कुछ सौदेमें स्वाहा कर दिया, यावत् जेवर गिरवी व माथे कर्ज छोड़ गए थे। अंधी मां एवं दो दो बहिनें, मामाजी सुगनचंदजी कोचरसे आपको सहारा मिला। अजितमलजी कोचर के पास रिणी, सरदारशहर में तीन वर्ष रह कर लिखापढी व काम काज सीखे। सं० १९६४ में कलकत्ता आये, लालचंद प्रतापचंद फर्म में मगनमलजी कोचर से चलानी व खाता बही का काम सीखा। पहले खामाखर्च पर रहे फिर १२५) की साल और सं० १९६८ तक ४००) तक वृद्धि हुई। सं० १९६९ में बीकानेर आकर नेमचंदजी सेठिया के साझेदारी में "नेमचंद मूलचंद" नाम से कपड़े की दुकान की। इसी बीच सं० १९६७ में एक बहिन का ब्याह हुआ सं० १९७० तक कोचरों के यहां थे फिर पूर्णतः स्वावलंबी होनेपर सं० १९७० में अपना विवाह किया व छोटी बहिन छगनमलजी कातेला को ब्याही। दुकान चलती थी, प्रतिष्ठा जम गई। सं० १९७२ में युरोपीय महायुद्ध छिड़ने पर दुकान बंदकर आप कलकत्ता आये। पनालाल किशनचंद बांठिया के यहां ४५०) की सालमें रहे ६ मास बाद ६५०) दूसरे वर्ष १०००) की साल हुई। इस प्रकार उन्नति कर ऋण परिशोध किया। फिर श्री अभयराजजी नाहटा के साझे में एक वर्ष काम किया जिससे १०००) रुपये का लाभ हुआ। गंभीरचंद राठी के साझे में १॥ वर्ष में ७०००) पैदा किये। सं० १९७६ से चार वर्ष तक प्रेमराज हजारीमल के सांझे में काम किया फिर हमीरमल बहादुरमल के साथ काम कर मूलचंद नाहटा के नाम से स्वतंत्र फर्म खोला। १९९० में बाबाजी हीरालालजी के गोद गये। सं० १९९९ में युद्धकालीन परिस्थितिवश बीकानेर जा कर कपड़े की दुकान की।

सं० २००२ में बीकानेर की दुकान उठाकर कलकत्ता आये और व्यापार प्रारम्भ किया। सं० २००४ से हमारे नाहटा ब्रदर्स फर्म के साथ व्यापार चालू किया जिससे पर्याप्त लाभ हुआ, आज भी हमारे सीरसामें में व अपनी स्वतन्त्र दुकान चलाते हुए सुखमय व सन्तोषी जीवन बिता रहे हैं। यों आप निःसंतान है, एक लड़की हुई जो चल बसी पर 'उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के अनुसार अपने कुटुम्बी जनोंके भरण पोषण का सर्वदा लक्ष्य रखा। भाणजा भाणजी और उनकी संतानादि के विवाह-सादी में आपने हजारों रुपये व्यय किये। आप ऋण को बड़ा पाप समझते हैं और कभी ऋण लेकर काम करना पसन्द नहीं करते। अपना व अपने पूर्वजों का ऋण कानूनन अवधि बीत जानेपर भी अदा करके ही सन्तुष्ट हुए। आपमें संग्रह वृत्ति नहीं है, ज्यों पैदा होता जाय खर्च करते जाना, दलाल, गुमास्तों को बांट देना एवं सुकृत कार्योंमें लगाते रहना यही आपका मुख्य उद्देश्य है। अपने विश्वस्त भाणजा पीरदान पुगलिया को बाल्यकालसे काम काज में होशियार कर अपना साझीदार बना लिया व उसी पर सारा व्यापार निर्भर कर संतोषी जीवन यापन कर रहे हैं।

आपको ऋण देना भी पसन्द नहीं, यदि दिया तो सुकृत खाते समझ कर. यदि वापस आया तो जमा कर लिया, नहीं तो तकादा नहीं कर अपनी वर्षगांठपर उसे माफ कर दिया।

श्री मूलचन्दजी चित्त के उदार हैं, उन्हें भाइयों और स्वधर्मियों को उत्तमोत्तम भोजन कराने में आनन्द मिलता है। लोभवृत्तिसे दूर रहकर आयके अनुसार खर्च करते रहते हैं। बीकानेरस्थ नाहटोंकी बगीची व मन्दिर में ११००० व्यय किये, वहां पानी की प्रपा चालू है। सुकृत कार्यों में महीनेमें सौ दो सौ का तो व्यय करते ही रहते हैं। बीकानेरमें आदीश्वर मण्डल की स्थापना कर प्रथम २०००) फिर प्रति वर्ष पांच सात सौ देते रहते है। कलकत्ता के जैन भवन को ५००) दिये थे। तीर्थयात्रादि का भी लाभ लेते रहते हैं। प्रस्तुत "बीकानेर जैन लेख संग्रह' के प्रकाशन का अर्थ व्यय वहन कर आपने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की है।

शासनदेव से प्रार्थना है कि आप दीर्घायु होकर चिरकाल तक ज्ञानोपासना एवं शासनोन्नति के नाना कार्यों में योगदान करते रहें।

प्राक्कथन

श्री अगरचन्द नाहटा व भंवरलाल नाहटा राजस्थान के अति श्रेष्ठ कर्मठ साहित्यिक हैं। एक प्रतिष्ठित व्यापारी परिवारमें उनका जन्म हुआ। स्कूल कालेजी शिक्षासे प्रायः बचे रहे। किन्तु अपनी सहज प्रतिभा के बल पर उन्होंने साहित्य के वास्तविक क्षेत्रमें प्रवेश किया, और कुशाग्र बुद्धि एवं श्रम दोनों की भरपूर पूंजीसे उन्होंने प्राचीन ग्रन्थों के उद्धार और इतिहास के अध्ययन में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। पिछली सहस्राब्दी में जिस भव्य और बहुमुखी जैन धार्मिक संस्कृति का राजस्थान और पश्चिमी भारत में विकास हुआ उसके अनेक सूत्र नाहटाजीके व्यक्तित्वमें मानों बीज रूपसे समाविष्ट हो गए हैं। उन्हींके फलस्वरूप प्राचीन ग्रन्थ भण्डार, संघ, आचार्य, मन्दिर, श्रावकों के गोत्र आदि अनेक विषयों के इतिहास में नाहटाजी की सहज रुचि है और उस विविध सामग्री के संकलन, अध्ययन और व्याख्या में लगे हुए वे अपने समय का सदुपयोग कर रहे हैं। लगभग एक सहस्र संख्यक लेख और कितने ही ग्रन्थ* इन विषयों के सम्बन्ध में वे हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित करा चुके हैं। अभी भी मध्याह्न के सूर्यकी भांति उनके प्रखर ज्ञानकी रश्मियां बराबर फैल रही हैं। जहाँ पहले कुछ नहीं था, वहाँ अपने परिश्रम से कण-कण जोड़कर अर्थका सुमेरु संगृहीत कर लेना, यही कुशल व्यापारिक बुद्धिका लक्षण है। इसका प्रमाण श्री अभय जैन पुस्तकालय के रूपमें प्राप्त है। नाहटाजी ने पिछले तीस वर्षोंमें निरन्तर प्रयत्न करते हुए लगभग पन्द्रह सहस्र हस्त-लिखित प्रतियां वहाँ एकत्र की है एवं पांच सौ के लगभग गुटकाकार प्रतियों का संग्रह किया है। यह सामग्री राजस्थान एवं देशके साहित्यिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के लिये अतीव मौलिक और उपयोगी है।

जिस प्रकार नदी प्रवाह में से बालुका धोकर एक-एक कण के रूपमें पौपीलिक सुवर्ण प्राप्त

---

* हर्ष है कि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में बिखरे हुए इन निबन्धों की मुद्रित सूची विद्वानों के उपयोगार्थ नाहटाजी ने प्रकाशित करा दी है।

किया जाता था, कुछ उसी प्रकार का प्रयत्न 'बीकानेर जैन लेख संग्रह' नामक प्रस्तुत ग्रन्थ में नाहटाजी ने किया है। समस्त राजस्थान में फैली हुई देव-प्रतिमाओंके लगभग तीन सहस्र लेख एकत्र करके विद्वान् लेखकों ने भारतीय इतिहास के स्वर्णकणों का सुन्दर चयन किया है। यह देखकर आश्चर्य होता है कि मध्यकालीन परम्परा में विकसित भारतीय नगरों में उस संस्कृति का कितना अधिक उत्तराधिकार अभीतक सुरक्षित रह गया है। उस सामग्री का उचित संग्रह और अध्ययन करनेवाले पारखी कार्यकर्ताओं की आवश्यकता है। अकेले बीकानेर के ज्ञान-भण्डारों में लगभग पचास सहस्र हस्तलिखित प्रतियों के संग्रह विद्यमान हैं। यह साहित्य राष्ट्रकी सम्पत्ति है। इसकी नियमित सूची और प्रकाशन की व्यवस्था करना समाज और शासन का कर्तव्य है। बीकानेर के समान ही जोधपुर, जैसलमेर, जयपुर, उदयपुर, कोटा, बूंदी, आदि बड़े नगरों की सांस्कृतिक छानबीन की जाय तो उन स्थानोंसे भी इसी प्रकार की सामग्री मिलने की सम्भावना है। प्रस्तुत संग्रह के लेखोंसे जो ऐतिहासिक और सांस्कृतिक सामग्री प्राप्त होती है, उसका अत्यन्त प्रामाणिक और विस्तृत विवेचन विद्वान लेखकों ने अपनी भूमिका में किया है। उत्तरी राजस्थान और उससे मिला हुआ जांगल प्रदेश प्राचीनकाल में साल्व जनपद के अन्तर्गत था। सरस्वती नदी वहां तक उस समय प्रवाहित थी। पुरातत्त्व बिभाग द्वारा नदीके तटोंपर दूर तक फैले हुए प्राचीन टीलोंके अवशेष पाए गए हैं। किन्तु मध्यकालीन इतिहास का पहला सूत्र संवत् १५४५ से आरम्भ होता है, जब जोधपुर नरेश के पुत्र बीकाजी ने जोधपुर से आकर बीकानेर की नींव डाली। कई लेखों में बीकानेर को विक्रम-पुर कहा गया है, जो उसके अपभ्रंश नामका संस्कृत रूप है। बीकानेर का राजवंश आरंभ से ही कला और साहित्य को प्रोत्साहन देनेवाला हुआ, फिर भी बीकानेर के सांस्कृतिक जीवन की सविशेष उन्नति मन्त्रीश्वर कर्मचन्द ने की। नगर की स्थापना के साथ ही वहाँ वैभवशाली मन्दिरों का निर्माण आरंभ हो गया। सर्व प्रथम आदिनाथ के चतुर्विंशति जिनालय की प्रतिष्ठा संवत् १५६१ में हुई। यह बड़ा देवालय इस समय चिन्तामणि मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। यह विचित्र है कि इस मन्दिर में स्थापना के लिए मूलनायक की जो प्रतिमा चुनी गई वह लगभग पौने दो सौ वर्ष पूर्व संवत् १३८० में स्थापित मन्डोवर से लाई गई थी। इस मन्दिर की दूसरी विशेषता यहांका भूमिगृह है, जिसमें लगभग एक सहस्र से ऊपर धातुमूर्तियां अभी तक सुरक्षित हैं। ये मूर्तियां सिरोही के देवालयों की लूटमें अकबर के किसी सेनानायक ने प्राप्त करके बादशाह के पास आगरे भेज दी थीं। वहां से मन्त्रीश्वर कर्मचन्दने बीकानेर नरेश द्वारा संवत् १६३६ में सम्राट् अकबर से इन्हें प्राप्त किया और इस मन्दिर में सुरक्षित रख दिया। श्रीनाहटाजीने सं० २००० में इनके लेखों की प्रतिलिपि बनाई थी जो इस संग्रहमें पहली बार प्रकाशित की गई है (लेख संख्या ५६-११५४।) इनमें सबसे पुराना लेख—संवत् १०२० का है और उसके बाद प्राय: प्रत्येक दशाब्दीके लिये लेखों का लगातार सिलसिला पाया जाता है। भारतीय धातुमूर्तियोंके इतिहासमें इस प्रकार की क्रमबद्ध प्रामाणिक सामग्री अन्यत्र दुर्लभ है।

इन मूर्तियों की सहायता से लगभग पांच शती की कला शैली का साक्षात् परिचय प्राप्त हो सकता है। इस दृष्टिसे इनका पृथक् अध्ययन और सचित्र प्रकाशन आवश्यक है।

विक्रम की सोलहवीं शती में चार बड़े मन्दिर बीकानेर में बने और फिर चार सत्रहवीं शती में। इस प्रकार संवत् १५६१ से संवत् १६७० तक सौ वर्ष के बीच में आठ बड़े देवालयों का निर्माण भक्त श्रेष्ठियों द्वारा इस नगर में किया गया। उस समय तक देश में मन्दिरों का वास्तु-शिल्प जीवित अवस्था में था। जगती, मंडोवर और शिखर के सूक्ष्म भेद और उपभेद शिल्पियों को भलीभांति ज्ञात थे। जनता भी उनसे परिचित रहती थी और उनके वास्तु का रस लेने की क्षमता रखती थी। आज तो जैसे मन्दिरों का अस्तित्व हमारी आंख से एकदम ओझल हो गया है। उनके वास्तु की जानकारी जैसे हमने बिलकुल खो दी है। भद्र, अनुग, प्रतिरथ, प्रतिकर्ण, कोण, इनमें से प्रत्येक की स्थिति, विस्तार निर्गम और उत्सेध या उदय के किसी समय निश्चित नियम थे। भद्रार्ध और अनुग और कोण के बीच में प्रासाद का स्वरूप और भी अधिक पल्लवित करने के लिये कोणिकाओं के निर्गम बनाए जाते थे, जिन्हें पल्लविका या नन्दिका कहते थे। इन कई भागों के उठान के अनुसार ही ऊपर चलकर शिखरमें रथिका और शृङ्ग एवं उरु शृङ्ग बनाते थे, तथा प्रतिकर्ण और कोण के शिखर भागों को सजाने के लिये कितने ही प्रकार के अण्डक, तिलक और कूट बनाए जाते थे। अण्डकों की संख्या ५ से लेकर ४-४ के क्रम से बढ़ती हुई १०१ तक पहुंचती थी। इनमें पांच अंडकवाला प्रासाद केसरी और अन्तिम १०१ अंडकों का प्रासाद देवालयों का राजा मेरु कहलाता था। एक सहस्र अण्डकों से सुशोभित शिखरवाले प्रासाद भी बनाए जाते थे। इस प्रकार के १५० से अधिक प्रासादों के नाम और लक्षण शिल्प-ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं। ऐसे प्रासाद जीवन के वास्तविक तथ्य के अंग थे, शिल्पियों की कल्पना नहीं। अतएव यह देखकर प्रसन्नता होती है कि भांडाशाह द्वारा निर्मित सुमतिनाथ के मन्दिर में संवत् १५७१ विक्रमी के लेख में उसे त्रैलोक्यदीपक प्रासाद कहा गया है, जिसका निर्माण सूत्रधार गोदा ने किया था—

१ संवत् १५७१ वर्षे आसो
२ सुदि २ रवौ राजाधिराज
३ श्री लूणकरणजी विजय राज्ये
४ साहभांडा प्रासाद नाम त्रैलो—
५ क्यदीपक करावितं सूत्र०
६ गोदा कारित

शिल्परत्नाकर में त्रैलोक्यतिलक, त्रैलोक्यभूषण और त्रैलोक्यविजय तीन प्रकार के विभिन्न प्रासादों के नाम और लक्षण दिये हुए हैं। इनमें से त्रैलोक्यतिलक प्रासाद में शिखर के चारों ओर ४२५ अंडक और उन अंडकों के साथ २४ तिलक बनाए जाते थे। वास्तुशास्त्र की दृष्टि से यह बात छान बीन करने योग्य है कि सूत्रधार गोदा के त्रैलोक्यदीपक प्रासाद के

वर्त्तमान लक्षण शिल्प ग्रन्थों के किस त्रैलोक्यप्रासाद के साथ ठीक ठीक घटते हैं। भांडासरजी के मंदिर की जगती में बनी हुई वाद्ययन्त्रधारिणी पुत्तलिकाएँ विभिन्न नाट्य मुद्राओं में अति सुन्दर बनी हैं।

बीकानेर अपने सहयोगी नगरों में 'आठ चैत्ये बीकानेरे' इस विरुद से प्रसिद्ध हुआ, मानो नगर की अधिष्ठात्री देवता के लिए इस प्रकार की कीर्ति संपादित करके बीकानेर के श्रीमन्त श्रेष्ठियों ने नगर देवता के प्रति अपने कर्तव्य का उचित पालन किया था। उसके बाद और भी छोटे मोटे मन्दिर वहां बनते रहे, जिनका नाम परिचय प्रस्तुत ग्रन्थमें दिया गया है। यथार्थ में बीकानेर के नागरिकों के कर्तव्य पालन का यह आरम्भ ही है।

जिस दिन हम अपने नगरों के प्रति पर्याप्त रूप में जागरूक होंगे, और उनके सांस्कृतिक उत्तराधिकार के महत्त्व को पहचानेंगे, उस दिन इन देव-प्रसादों के सचित्र वर्णन और वास्तु-शैली और कोरणी के सूक्ष्म अध्ययन से संयुक्त परिचय ग्रन्थों का निर्माण किया जायगा। पर उस दिन के लिये अभी प्रतीक्षा करनी होगी। प्रासाद-निर्माताओंका स्वर्णयुग तो समाप्त हो गया, पर वास्तु और शिल्प के सच्चे अनुरागी और पारखी उनके उत्तराधिकारियोंने अभी जन्म नहीं लिया। पाश्चात्य शिक्षा की लपटोंने जिनके सांस्कृतिक मानसको झुलसा डाला है, ऐसे विद्रूप प्राणी हम इस समय बच रहे हैं। कला के अमृत जल से प्रोक्षित होकर हमारे सांस्कृतिक जीवन का नवावतार जिस दिन सत्य सिद्ध होगा, उसी दिन इन प्राचीन देव प्रासादों के मध्य में हम सन्तुलित स्थिति प्राप्त कर सकेंगे।

लेखकों ने बीकानेर नगर के १३ अन्य मन्दिर एवं राज्य के विभिन्न स्थानों में निर्मित लगभग ५० अन्य जैन मन्दिरों का भी उल्लेख किया है। उनके वास्तु-शिल्प का भी विस्तृत अध्ययन उसी प्रकार अपेक्षित है। इनमें सुजानगढ़ में बना हुआ जगवल्लभ पार्श्वनाथका देव-सागर प्रासाद उल्लेखनीय है जिसकी प्रतिष्ठा अभी चालीस पचास वर्ष पूर्व सं० १६५१ में हुई थी और जिसका निर्माण साढ़े चार लाख रुपये की लागत से हुआ था। भांडासर के त्रैलोक्यदीपक प्रासाद की भांति यह भी वास्तु प्रासाद का सविशेष उदाहरण है।

मन्दिरों की तरह जैन उपाश्रय भी सांस्कृतिक जीवन के केन्द्र थे। इनमें तपस्वी और ज्ञान-साधक यति एवं आचार्य निवास करते थे। आज तो इस संस्था का मेरुदण्ड झुक गया है। बीकानेर का बड़ा उपाश्रय जहां बड़े भट्टारकों की गद्दी है, विशेष ध्यान देने योग्य है, क्योंकि वर्तमान में इसके अन्तर्गत बृहत् ज्ञानभण्डार नामक हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह है, जिसमें हितवल्लभ नामके एक यतिने अपनी प्रेरणा से नौ यतियोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंका (संवत् १६५८ में) एकत्र संग्रह करा दिया था। इस संग्रह में १०००० ग्रन्थ हैं, जिनका विशेष विवरण युक्त सूचीपत्र श्री नाहटाजी ने स्वयं तैयार किया है। अवश्य ही वह सूचीग्रन्थ मुद्रित होने योग्य है। इसी प्रसंगमें बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी की ओर भी ध्यान जाता है, जो संघ प्रवेश से पूर्व बीकानेर का राजकीय पुस्तकालय था, किन्तु अब महाराज श्रीके निजी स्वत्व में है।

इस संग्रह में १२००० ग्रंथ एवं ५०० के लगभग गुटके हैं तथा अनेक महत्त्वपूर्ण चित्र हैं। स्वनामधन्य बीकाजी के वर्तमान उत्तराधिकारी से हम इतना निवेदन करना चाहेंगे कि उनके पूर्वजों की यह ग्रन्थराशि भारतीय संस्कृति का अभिन्न अंग है। संपूर्ण राष्ट्रको और विशेषतः समस्त राजस्थानी प्रजा को इस निधिमें रुचि है। यह उनके पूर्वजोंका साहित्य और कला भाण्डार है, अतएव उदार दृष्टिकोण से जनताके लिए इसकी सुरक्षा का प्रबन्ध होना चाहिए। इस संबन्धमें भारतीय शासन से भी निवेदन है कि वे वर्तमान उपेक्षावृत्तिको छोड़कर इस ग्रंथ संग्रह की रक्षा के लिये पर्याप्त धन की व्यवस्था करें जिससे ग्रंथोंका प्रकाशन भी आगे हो सके और योग्य पुस्तकपाल की देख-रेख में ग्रन्थों की रक्षा भी हो सके। विद्वान् लेखकोंने जैन ज्ञान-भाण्डारोंका परिचय देते हुए भूमिका रूपमें श्वेताम्बर और दिगम्बर ज्ञानभाण्डारों की उपयोगी सूची दी है। हमारा ध्यान विशेष रूपसे संवत् १५७१ और संवत् १६७८ के बीच में निर्मित हिन्दीके अनेक रास और चौपाई ग्रन्थों की ओर जाता है, जिनकी संख्या ५० के लगभग है। हिन्दी साहित्य की यह सब अप्रकाशित सामग्री है। संवत् १६०२ की मृगावती चौपाई और सीता चौपाई ध्यान देने योग्य हैं।

श्री नाहटाजी ने इस सुन्दर ग्रंथ में ऐतिहासिक ज्ञान संवर्द्धनके साथ-साथ अत्यन्त सुरभित सांस्कृतिक वातावरण प्रस्तुत किया है, जिसके आमोदसे सहृदय पाठकका मन कुछ काल के लिये प्रसन्नतासे भर जाता है। सचित्र विज्ञप्तिपत्रोंका उल्लेख करते हुए १८६८ के एक विशिष्ट विज्ञप्ति पत्रका वर्णन किया गया है, जो बीकानेर के जैन संघ की ओर से अजीमगंज बंगाल में विराजित जैनाचार्य की सेवामें भेजने के लिये लिखा गया था। इसकी लम्बाई ६७ फुट है, जिसमें ५५ फुट में बीकानेरके मुख्य बाजार और दर्शनीय स्थानोंका वास्तविक और कलापूर्ण चित्रण है। लेखकोंने इन सब स्थानों की पहचान दी है। इसी प्रकार पल्लू से प्राप्त सरस्वती देवी की प्राचीन प्रतिमा का भी बहुत समृद्ध काव्यमय वर्णन लेखकोंने किया है। सरस्वती की यह प्रतिमा राजस्थानीय शिल्पकला की मुकुटमणि है, वह इस समय दिल्लीके राष्ट्रीय संग्रहालय में सुरक्षित है। इस मूर्तिमें जिन आभूषणोंका अंकन है उनका वास्तविक वर्णन सोमेश्वरकृत मानसोल्लास में आया है। सरस्वतीके हाथोंकी अंगुलियों के नख नुकीले और बढ़े हुए हैं, जो उस समय सुन्दरता का लक्षण समझा जाता था। मानसोल्लास में इस लक्षणको 'केतकी-नख' कहा गया है (३। ११६२)।

इस पुस्तक में जिस धार्मिक और साहित्यिक संस्कृतिका उल्लेख हुआ है, उसके निर्माण कर्ताओंमें ओसवाल जातिका प्रमुख हाथ था। उन्होंने ही अपने हृदय की श्रद्धा और द्रव्य राशि से इस संस्कृतिका समृद्ध रूप संपादित किया था। यह जाति राजस्थान की बहुत ही धर्मपरायण और मितव्ययी जाति थी, किन्तु सांस्कृतिक और सार्वजनिक कार्यों में वह अपने धनका सदुपयोग मुक्तहस्त होकर करती थी। बीकानेर में ओसवालों के किसी समय ७८ गोत्र थे, जिनमें ३००० परिवारों की गणना थी। आरम्भ में वे परिवार अपने मन से बस

गए थे। कहा जाता है कि पीछे मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र ने प्रत्येक जाति और गोत्रों के घरों को एक जगह बसा कर उनकी एक-एक गुवाड़ प्रसिद्ध कर दी। गुवाड़ का अर्थ मुहल्ला है। यह शब्द संस्कृत गोवाट से बना है, जिसका अर्थ था गायोंका बाड़ा। इस शब्दसे संकेत मिलता है कि प्रत्येक मुहल्ले की गाएँ एक-एक बाड़े में रहती थीं। प्रातःकाल वे गाएँ उसी बाड़े से जंगल में चरने के लिए चली जातीं और फिर सायंकाल लौटकर वहीं खड़ी हो जाती थीं। गायों के स्वामी दुहने और खिलाने के लिए उन्हें अपने घर पर ले आते थे। पुराने समयमें गायों की संख्या अधिक होती थी और प्रायः उन्हें इसी प्रकार बाड़े में छुट्टा रखते थे। गोवाट, गुवाड़ शब्द की प्राचीनता के विषय में अभी और प्रमाण ढूँढ़ने की आवश्यकता है, किन्तु इस प्रथाके मूलमें वैदिक गोत्र जैसी व्यवस्था का संकेत मिलता है। गोत्रकी निरुक्तिके विषय में भी ऐसा ही मत है कि समान परिवारों की गायों को एक स्थान पर रखने या बांधने की प्रथा से इस शब्द का जन्म हुआ। बीकानेर में ओसवाल समाज की २७ गुवाड़ें थीं। यह जानकर कुतूहल होता है कि नगरमें प्रत्येक जाति अपने अपने घरों की संख्या का पूरा लेखा जोखा रखती थी। सं० १६०५ के एक बस्तीपत्रक में घरों की संख्या २७०० लिखी है। अपने यहां की समाज-व्यवस्था में इस प्रकार से परिवारों की गणना रखना जातिके सार्वजनिक संगठन के लिए आवश्यक था। प्रत्येक परिवारका प्रतिनिधि व्यक्ति वृद्ध या स्थविर कहलाता था, जिसे आजकल 'बड़ा बूढ़ा' कहते हैं। बिरादरी की पंचायत या जाति सभा में अथवा विवाह आदि अवसरों पर वही कुल वृद्ध या 'बड़ा बूढ़ा' उस परिवार का प्रतिनिधि बनकर बैठता था। इस प्रकार कुल या परिवार जाति की न्यूनतम इकाई थी। कुलोंके समूहसे जाति बनती थी। जातिका सामाजिक या राजनैतिक संगठन नितान्त प्रजातन्त्रीय प्रणाली पर आश्रित था। इसे प्राचीन परिभाषा में 'संघप्रणाली' कहा जाता था। पाणिनिने अष्टाध्यायीमें कुलोंकी इस व्यवस्था और उनके कुलवृद्धों के नामकरण की पद्धति का विशद उल्लेख किया है। व्यक्ति के लिये यह बात महत्त्वपूर्ण थी कि परिवार के कई पुरुष-सदस्यों में गोत्र-वृद्ध या 'बड़ा बूढ़ा' यह उपाधि किस व्यक्ति विशेषके साथ लागू होती थी, क्योंकि वही उस कुलका प्रतिनिधि समझा जाता था। प्रति परिवार से एक प्रतिनिधि जातिकी पंचायत में सम्मिलित होता था। जातिके इस संघ में प्रत्येक कुलवृद्धका पद बराबर था, केवल-कार्य निर्वाहके लिये कोई विशिष्ट व्यक्ति सभापति या श्रेष्ठ चुन लिया जाता था। बौद्ध ग्रंथोंसे ज्ञात होता है कि वैशालीके लिच्छवि क्षत्रियोंकी जातिमें ७७०७ कुल या परिवार थे। क्योंकि वे राजनीतिक अधिकार से संपन्न थे इस वास्ते प्रत्येककी उपाधि 'राजा' होती थी। वैश्यों या अन्य जातियों की बिरादरी के संगठनमें राजा की उपाधि तो न थी किन्तु और सब बातोंमें पंचायत या जातीय सभा का ढांचा शुद्ध संघ प्रणाली से संचालित होता था। इस प्रकार के जातीय संगठनमें प्रत्येक जाति आन्तरिक स्वराज्यका अनुभव करती थी और अपने निजी मामलोंको निपटाने में पूर्ण स्वतन्त्र थी। इस प्रकारके स्वायत्त संगठन समाजके अनेक स्तरों पर प्रत्येक जातिमें विद्यमान थे, और जहां वे टूट नहीं गए हैं

वहां अभी तक किसी न किसी रूपमें जीवित हैं। इस प्रकार की व्यवस्था में परिवारोंकी गिनती लोगोंको कंठ रहती थी। घर-घरसे एक व्यक्ति को निमन्त्रित करने की प्रथा के लिए मेरठ की बोलीमें 'घर पत्ते' यह शब्द अभीतक जीवित रह गया है। श्रीनाहटाजी के उल्लेखसे ज्ञात होता है कि लाहणपत्र के रूपमें भी बिरादरी के घरों की संख्या रखी जाती थी, किन्तु लाहणपत्र* का यथार्थ अभिप्राय हमें स्पष्ट नहीं हुआ।

ग्रन्थ में संगृहीत लेखों को पढ़ते हुए पाठक का ध्यान जैन संघ की ओर भी अवश्य जाता है। विशेषतः खरतरगच्छ के साधुओं का अत्यन्त विस्तृत संगठन था। बीकानेर के राजाओं से वे समानता का पद और सम्मान पाते थे। उनके साधु अत्यन्त विद्वान् और साहित्य में निष्ठा रखनेवाले थे। इसी कारण उस समय यह उक्ति प्रसिद्ध हो गई थी कि 'आतम ध्यानी आगरे पण्डित बीकानेर'। इसमें बीकानेर के विद्वान् यतियों का उल्लेख तो ठीक ही है, साथ ही आगरे के 'आध्यातमी' संप्रदाय का उल्लेख भी ध्यान देने योग्य है। यह आगरे के

---

* 'लाहण' शब्द संस्कृत लभ् धातु से बना, लभ् से लाभ संज्ञा हुई। लाभ का प्राकृत और अपभ्रंश रूप 'लाह' है। उसके 'ण' प्रत्यय लगने से 'लाहण' शब्द हो गया। जयपुर, दिल्ली की ओर लाहणा कहते हैं गुजरात आदि में लाहणी शब्द प्रचलित है। महाकवि समयसुन्दर ने अपनी 'कल्पलता' नामक कल्पसूत्र वृत्ति में 'लाहणी' का संस्कृतरूप 'लंभनिका' शब्द लिखा है यतः—"गच्छे लंभनिका कृता प्रतिपुरे हम्मादिमेकं पुन."। 'लाहण' शब्द की व्युत्पत्ति से फलित हुआ कि लाभ के कार्य में इस शब्द का प्रयोग होना चाहिए अपने नगर, गांव, या समग्र देश में अपने स्वधर्मियों या जाति के घरों में मुहर, रुपया, पैसा मिश्री, गुड़, चीनी, थाली, चुंदड़ी इत्यादि वस्तुओंको बाँटने की प्रथा प्राचीनकाल से चली आ रही है। यह लेनेवाले को प्रत्यक्ष लाभ तथा देनेवाले को फलप्राप्तिरूप लाभप्रद होने से इसका नाम लाहण सार्थक है। पूर्वकालके धनी-मानी प्रभावशाली श्रावकों, संघपतियों के जीवनचरित्र, शिलालेख ग्रंथ-प्रशस्तियों में इसके पर्याप्त उल्लेख पाये जाते हैं। आज भी यह प्रथा सर्वत्र वर्त्तमान है। बीकानेर में इस प्रथा ने अपना एक विशेष रूप धारण कर लिया है। बीकानेर के ओसवाल समाज में प्रायः प्रत्येक व्यक्ति पूर्वकाल में 'लाहण' करना एक पुण्य कर्त्तव्य समझकर यथा शक्ति अवश्य किया करता था। मृत्यु के उपरान्त अन्त्येष्टि के हेतु उसी व्यक्ति की श्मशान यात्रा मंडपिका (मंडी) युक्त निकाली जाती थी जिसकी लाहण-लावण हो चुकी हो।

लाहण की प्रथा यों है कि जो व्यक्ति अपनी या अपनी पत्नी आदि की 'लाहण' करता हो उसे प्रथम अपनी गुवाड़ व सगे सम्बन्धियोंमें निमंत्रण देना होता है फिर गुवाड़ या घर के दस पाँच सदस्य मिलकर सत्ताइस गुवाड़ में 'टोली' फिरते हैं, तीसरी टोली में रुपयों की कोथली साथ में रहती है। प्रत्येक मुहल्ले की पंचायती में जाकर जितने घरों तथा बगीची, मन्दिर आदि की लाहण लगती हो जोड़कर रुपये चुका दिये जाते हैं। इन रुपयों का उपयोग पंचायती के वासण-बरतन, सामान इत्यादि में किया जाता है। संध्या समय घर के आगे या चौक में सभी आमंत्रित व्यक्तियों की उपस्थिति में चौधरी (जाति-पंच) के आने पर श्रीनामा डालकर लाहणपत्र लिखा जाता है फिर सगे-संबधियों की पारस्परिक मिलनी होने के बाद 'लाहण' उठ जाती है।

—सम्पादक

ज्ञानियों की मण्डली थी, जिसे शैली कहते थे। 'अध्यातमी' बनारसीदास इसीके प्रमुख सदस्य थे। ज्ञात होता है अकबर की दीन इलाही प्रवृत्ति इसी प्रकार की आध्यात्मिक खोज का परिणाम थी। बनारस में भी अध्यात्मियों की एक शैली या मण्डली थी। किसी समय राजा टोडरमल के पुत्र गोवर्द्धनदास उसके मुखिया थे। बनारस में आज भी यह उक्ति बच गई है - 'सब के गुरू गोबरधनदास'। अवश्य ही अकबर और जहाँगीर के काल में आगरा और बीकानेर जैसी राजधानियों के नागरिकों में निजी विशेषताओं के आधार पर कुछ होड़ रहती होगी।

भारत के मध्यकालीन नगर संख्या में अनेक हैं। प्रायः प्रत्येक प्रदेश में अभी तक उनकी परम्परा बची है। सांस्कृतिक दृष्टि से उनकी छानबीन, उनकी संस्थाओं को समझने का प्रयत्न और उनके इतिहास की बिखरी हुई कड़ियों को जोड़कर उनका सचित्र वर्णन करने के प्रयत्न होने चाहिएं। वह नगर बड़भागी है, जहाँ के नागरिकों के मन में इस प्रकार की सांस्कृतिक आराधना का संकल्प उत्पन्न हो। बीकानेर के नाहटा की भाँति चाँपानेर, माण्डू, सूरत, धोलका, चन्देरी, बीदर, अहमदाबाद, आगरा, दिल्ली, बनारस, लखनऊ आदि कितने ही नगरों को अपने अपने नाहटाओं की आवश्यकता है।

प्रस्तुत संग्रह में जो तीन सहस्र के लगभग लेख हैं उनमें से अधिकांश ११ वीं से सोलहवीं शती के बीचके हैं। उस समय अपभ्रंश भाषा की परम्परा का साहित्य और जीवन पर अत्यधिक प्रभाव था, इसका प्रमाण इन लेखोंमें आये हुए व्यक्तिवाची नामोंमें पाया जाता है। जैन आचार्यों के नाम प्रायः सब संस्कृत में हैं, किन्तु गृहस्थ स्त्री-पुरुषों के नाम जिन्होंने जिनालय और मूर्तियों को प्रतिष्ठापित कराया, अपभ्रंश भाषामें हैं। ऐसे नामों की संख्या इन लेखोंमें लगभग दस सहस्र होगी। यह अपभ्रंश भाषाके अध्ययन की मूल्यवान् सामग्री है। इन नामोंकी अकारादि क्रमसे सूची बनाकर भाषा शास्त्रकी दृष्टिसे इनकी छान बीन होनी आवश्यक है। उदाहरण के लिये 'साहु पासड़ भार्या पाल्हण दे' में 'पासड़' अपभ्रंश रूप है। मूल नाम 'पार्श्वदेव' होना चाहिए। उसके उत्तर पद 'देव' का लोप करके उसका सूचक 'ड' प्रत्यय जोड़ दिया गया, और पार्श्वके स्थान में 'पास' आदेश हुआ। इस प्रकार 'पासड' यह नाम का रूप हुआ। 'पाल्हण दे' संस्कृत 'पालन देवी' का रूप है। इसी प्रकार जसा, यह संस्कृत यशादत्त का संक्षिप्त अपभ्रंश रूप था। नामोंको संक्षिप्त करने की प्रवृत्ति अत्यन्त प्राचीन थी। पाणिनि ने भी विस्तार से इसका उल्लेख किया है और उन नियमों का विश्लेषण किया है जिनके अनुसार नामोंको छोटा किया जाता था। इनमें नामके उत्तर पदका लोप सबसे मुख्य बात थी। लुप्त पदको सूचित करने के लिये एक प्रत्यय जोड़ा जाता था, जैसे—'देवदत्त' को छोटा करने के लिये 'दत्त' का लोप करके 'क' प्रत्ययसे 'देवक' रूप बनता था। इस प्रकार के नामोंको अनुकम्पा नाम (दुलारका नाम) कहा जाता था। नामोंको छोटा करने की प्रथा पाणिनि के पीछे भी बराबर जारी रही, जैसा कि भरहुत और सांचीमें आए

हुए नामोंसे ज्ञात होता है। गुप्तकालमें नामोंके संस्कृत रूप की प्रधानता हुई। उस समय की जो मिट्टी की मुहरें मिली हैं उनपर अधिकांश नाम शुद्ध संस्कृत में और अविकल रूपमें मिलते हैं, जैसे—'सत्यविष्णु, चन्द्रमित्र, धृतिशर्मा आदि। गुप्तकाल के बाद जब अपभ्रंश भाषा का प्रभाव बढ़ा तब लगभग ८ वीं शतीसे नामोंके स्वरूप ने फिर पलटा खाया। जैसे राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द का नाम 'गोइज्ज' मिलता है। १० वीं शतीके बाद तो प्रायः नामों का अपभ्रंश रूप ही देखा जाता है, जैसे नागभट्ट वाग्भट्ट और त्यागभट्ट जैसे सुन्दर नामोंके लिये नाहड़, बाहड़ और चाहड़ ये अपभ्रंश रूप शिलालेखोंमें मिलते हैं। इस प्रकार के मध्यकालीन नामोंकी मूल्यवान सामग्री के चार स्रोत हैं—शिलालेख, मूर्ति प्रतिष्ठा लेख, पुस्तक प्रशस्तियां और साहित्य। चारों ही प्रकार की पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। मुनि पुण्यविजयजी द्वारा प्रकाशित जैन पुस्तक प्रशस्ति संग्रह में और श्री विनयसागरजी द्वारा प्रकाशित 'प्रतिष्ठा लेख संग्रह' में अपभ्रंश कालीन नामोंकी बृहत् सूचियां दी हुई हैं।

बीकानेर के प्रतिष्ठा लेखोंमें आए हुए नाम भी उसी शृङ्खला की बहुमूल्य कड़ी प्रस्तुत करते हैं। इनकी भी क्रम बद्धसूची बननी चाहिए। इन नामोंसे यह भी ज्ञात होता है कि कुमारी अवस्था में स्त्रियों का पितृ-नाम भिन्न होता था किन्तु पतिके घरमें आने पर पतिके नाम के अनुसार स्त्री के नाम में परिवर्तन कर लिया जाता था। जैसे—साहु तेजा के नामके साथ भार्या तेजल दे, अथवा साहु चापा के साथ भार्या चापल दे। फिर भी इस प्रथाका अनिवार्य आग्रह न था, और इसमें व्यक्तिगत रुचिके लिये काफी छूट थी। इन नामोंके अध्ययन से न केवल भाषा सम्बन्धी विशेषताएं ज्ञात हो सकेंगी किन्तु धार्मिक लोक प्रथाओं पर भी प्रकाश पड़ सकता है। जैसे 'साहु दूला पुत्र छीतर' इस नाममें (लेख संख्या १६१६) दुर्लभ राजका पहले दुलह अपभ्रंश रूप और पुन देश-भाषामें उसका उच्चारण दूला हुआ। 'छीतर' नामसे ज्ञात होता है कि उसकी माताके पुत्र जीवित न रहते थे। देशी भाषामें 'छीतर' टूटी हुई टोकरी का वाचक था, ऐसा हेमचन्द्र ने लिखा है। जब पुत्रका जन्म हुआ तो माताने उसे छीतरी में रखकर खींचकर घूरे पर डाल दिया, जहाँ उसे घरकी मेहतरानी ने उठा लिया। इस प्रकार मानों पुत्रको मृत्युके लिये अर्पित कर दिया गया। मृत्युका जो भाग बच्चेमें था उसकी पूर्ति कर दी गई। फिर उस बच्चे को माता-पिता निष्क्रय देकर मोल ले लेते थे; वह मानों मृत्युदेव के घरसे लौटकर नया जीवन आरम्भ करता था। इस प्रकार के बच्चों को 'छीतर' नाम दिया जाता था। अपभ्रंश में 'सोल्लू' या सुल्ला' नाम भी उसी प्रकार का था। सुल्, धातु फेंकने के अर्थमें प्रयुक्त होती थी। हिन्दी फिक्कू खचेड़ू आदि नाम उसी परम्परा या लोक विश्वास के सूचक हैं। मध्यकालीन अपभ्रंश नामों पर स्वतन्त्र अनुसंधान की अत्यन्त आवश्यकता है। उसके लिये नाहटाजी ने इन लेखोंमें मूल्यवान् सामग्री संगृहीत कर दी है। यह भी ज्ञातव्य है कि पुरुष नामोंके साथ श्रेष्ठी, साहु, व्यावहारिक आदि सम्मान सूचक पदोंका विशेष अर्थ था। अब वे संस्थाएँ धुंधली पड़ गई हैं। अतएव

इन पदोंके अर्थ भी स्पष्ट नहीं रहे। प्राचीन परम्परा के अनुसार सोने चांदी के बजार में जो सर्राफे के सदस्य होते थे वे ही श्रेष्ठी कहलाते थे। प्रत्येक नगर की सोनहट्टी या सराफे में उनकी संख्या नियत होती थी और विधिपूर्वक चुनाव के बाद ही वे लोग सर्राफे के सदस्य बनाए जाते थे। इन्हींको उत्तर भारत में महाजन कहने लगे। एक लेख में श्रेष्ठी आना के पुत्र नायक को व्यवहारिक लिखा गया है (लेख ३१८)। इसकी संगति यही है कि पिता के बाद पुत्र को श्रेष्ठिपद प्राप्त नहीं हुआ और वह केवल व्यवहारिक अर्थात् रुपये के लेन-देन का काम ही करता रहा। इस प्रकार इन लेखों की सामग्री से कई मध्यकालीन संस्थाओं को नई आंख से देखने में सहायता मिलती है।

काशी विश्वविद्यालय
ज्येष्ठ शुक्ल ११, सं० २०१२

वासुदेवशरण

श्री जिनसुखसूरिजी
(प्रस्तावना पृ० ८–९)

श्री जिनहर्षसूरि
(प० प्र० पृ० १२)
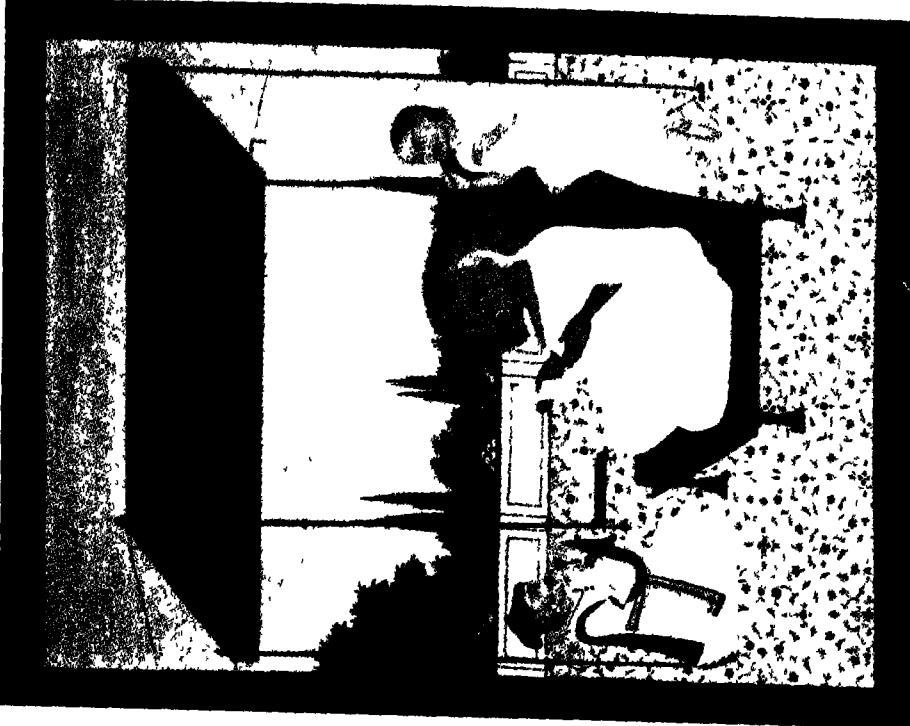
स्वर्गीय जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी
श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी खरतरगच्छ धर्मशाला के संस्थापक
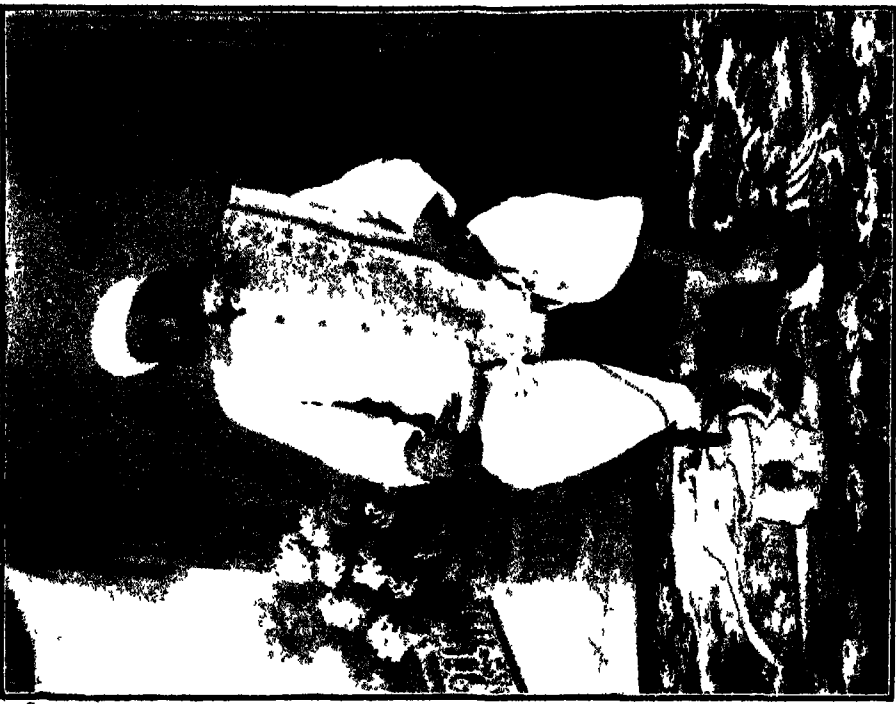
स्वर्गीय श्री शंकरदानजी नाहटा
अभय जैन ग्रन्थालय, ग्रन्थमाला, कलाभवनादि के संस्थापक

भूमिका

बीकानेरके जैन इतिहास पर एक दृष्टि

राजस्थान प्रान्तमें बीकानेर राज्य (वर्त्तमान डिवीजन) का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस राज्यका प्रधान अंश प्राचीन कालमें जांगल देशके नामसे प्रसिद्ध रहा है। वीरवर बीकाजी के पूर्व इस राज्यके कई हिस्सों पर सांखले-परमारोंका, कुछ पर मोहिल-चौहानोंका, कुछ पर भाटी-यादवोंका एवं कुछ पर जोहिये व जाटोंका अधिकार था। बीकाजीने अपने पराक्रमसे उन सब पर विजय प्राप्त कर अपना शासन स्थापित किया और अपने नामसे इस बीकानेर राज्यकी नींव डाली। परवर्त्ती नरेशोंने भी इसे यथाशक्य बढ़ाया, जिसके फलस्वरूप इसका क्षेत्रफल २३३१७ वर्गमील तक पहुंचा। इसकी लंबाई चौड़ाई लगभग २०८ मील है।

बीकानेर राज्यके अनेक प्राचीन स्थान ऐतिहासिक दृष्टिसे बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। सूरतगढ़ के निकटवर्त्ती रंगमहलसे कुछ पकी हुई मिट्टीकी मूर्त्तियां आदि प्राप्त हुई थीं। गतवर्ष सरस्वती और दृषद्वतीकी घाटियोंमें खुदाई हुई थी जिससे प्राप्त वस्तुओंका प्रागैतिहासिक हड़प्पा कालीन संस्कृतिसे सिलसिला जोड़ा गया है। यहां अनेक प्रागैतिहासिक स्थान हैं जिनकी परिपूर्ण खुदाई होनेपर भारतीय प्राचीन संस्कृति पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़नेकी संभावना है।

मध्यकालीन महत्त्वपूर्ण स्थान भी इस राज्यमें अनेक हैं, जिनमें बड़ोपल, पलू, भटनेर, नौहर, रिणी, द्रौणपुर, चरलू, रायसीसर, जांगलू, मोरखाणा, भादला, दद्रेवा आदि उल्लेखनीय हैं। पलूसे प्राप्त जैन-सरस्वती मूर्त्तिद्वय अपने कला सौन्दर्य्यके लिए विश्व-विख्यात हैं। कोलायत-तीर्थका धार्मिक दृष्टिसे बड़ा माहात्म्य है। कार्तिक पूर्णिमाको यहां हिन्दू समाजका बहुत बड़ा मेला भरता है। गोगा मैढ़ी आदिके मेले भी प्रसिद्ध हैं। देसनोककी करणी माता भी राजवंश एवं बहुजन मान्य है।

खाद्यान्न उत्पादनकी दृष्टिसे बीकानेर डिवीजनका नहरी इलाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। स्वर्गीय महाराजा गंगासिंह ने गंगानहर लाकर इस प्रदेशको बड़ा उपजाऊ बना दिया है। जो बीकानेर राज्य खाद्यान्नके लिये परमुखापेक्षी रहता था, आज लाखों मन खाद्यान्न उत्पन्न कर रहा है। इस प्रदेशके खनिज पदार्थ यद्यपि अभी तक विशेष प्रसिद्धिमें नहीं आये, फिर भी पलाणेकी कोयलेकी खान, दुलमेरांकी लाल पत्थरकी खान, जामसरका मीठा चूना, मुलतानी मिट्टी (मेट) आदि अच्छी होती है। यहांकी बालू आदिसे कांचके उद्योग भी विशेष पनप सकते हैं। आर्थिक दृष्टिसे भी यहांके अधिवासी समग्र भारतमें ख्याति प्राप्त हैं। इस दृष्टिसे बीकानेर धनाढ्योंका देश माना जाता रहा है और अपनी प्रजाके लिये स्वर्गीय शासक गंगासिंहजीको

बड़ा गौरव था। आसाम, बंगाल आदि देशोंके व्यापारकी प्रधान बागडोर यहींके व्यापारियोंके हाथमें है।

साहित्यिक दृष्टिसे भी बीकानेर राज्य बड़ा गौरवशाली है। अकेले बीकानेर नगरमें ही ६०-७० हजार प्राचीन हस्तलिखित प्रतियां सुरक्षित हैं। इनमें राजकीय अनूप संस्कृत लाइब्रेरी विश्व-विश्रुत है, जहाँ सैकड़ोंकी संख्यामें अन्यत्र अप्राप्य विविध विषयक ग्रन्थरत्न विद्यमान हैं। बड़ा उपासरा आदिके जैन ज्ञान भण्डारोंमें भी २० हजारके लगभग हस्तलिखित प्रतियाँ हैं। हमारे संग्रह—श्री अभय जैन ग्रन्थालयमें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विविध सामग्री संग्रहीत है ही। राज्यके अन्य स्थानोंमें चूरूकी सुराणा लाइब्रेरी आदि प्रसिद्ध है इन सबका संक्षिप्त परिचय आगे दिया जायगा।

कलाकी दृष्टिसे भी बीकानेर पश्चात्पद नहीं, यहाँकी चित्रकलाकी शैली अपना विशिष्ट स्थान रखती है और बीकानेरी कलम गत तीन शताब्दियोंसे सर्वत्र प्रसिद्ध है। बीकानेर के सचित्र विज्ञप्तिपत्र, फुटकर चित्र एवं भित्तिचित्र इस बातके ज्वलन्त उदाहरण हैं। शिल्पकला की दृष्टिसे यहांका भांडासरजीका मंदिर सर्वत्र प्रसिद्ध है। इस विषयमें "बीकानेर आर्ट एण्ड आर्चिटेक्चर" नामक ग्रन्थ द्रष्टव्य है।

इस प्रकार विविध दृष्टियोंसे गौरवशाली बीकानेर राज्यके जैन अभिलेखोंका संग्रह प्रस्तुत ग्रन्थमें उपस्थित किया जा रहा है इस प्रसंगसे वहांके जैन इतिहास सम्बन्धी कुछ ज्ञातव्य बातें दे देना आवश्यक समझ आगेके पृष्ठोंमें संक्षिप्त प्रकाश डाला जा रहा है।

बीकानेर राज्य-स्थापन एवं व्यवस्थामें जैनोंका हाथ

जोधपुर नरेश राव जोधाजीने जब अपने प्रतापी पुत्र श्री बीकाजीको नवीन राज्यकी स्थापना करनेके हेतु जांगल देशमें भेजा तब उनके साथ चाचा काधल, भाई जोगा, बीदा और नापा सांखलाके अतिरिक्त बोथरा वत्सराज एवं वैद लाखणसी आदि राजनीतिज्ञ ओसवाल भी थे। बीकानेर राज्यकी स्थापनामें इन सभी मेधावी व्यक्तियोंका महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है। बच्छावत वंशके मूल पुरुष बच्छराजजी—जो राव बीकाजीके प्रधान मंत्री थे—ने अपने बुद्धि वैभवसे शासन तंत्रको सुसंचालित कर राज्यकी बड़ी उन्नति की। राज्य स्थापनासे लगाकर महाराजा रायसिंह के समय पर्य्यन्त शासन प्रबन्धमें बच्छावत वंशका प्रमुख भाग रहा। यहां तक कि सभी राजाओंके प्रधान मंत्री इसी गौरवशाली वंशके ही होनेका उल्लेख "कर्मचन्द्र मंत्रि वंश प्रबन्ध" में पाया जाता है यथा—

राव बीकाजीके मन्त्री वत्सराज, राव लूणकरणजीके मंत्री कर्मसिंह, राव जयतसीजीके मंत्री वरसिंह और नगराज, राव कल्याणमल्लके मंत्री संग्रामसिंह व कर्मचन्द्र तथा राजा रायसिंहके मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र थे।

इन बुद्धिशाली मंत्रियोंने साम, दाम, दण्ड और भेद नीति द्वारा समय-समयपर आनेवाली विपत्तियोंसे राज्यकी रक्षा करनेके साथ-साथ उसकी महत्त्व वृद्धि और सीमा विस्तारके लिये पूर्ण

प्रयत्न किया। बीकानेरके दुर्ग-निर्माण एवं गवाड़ों (मुहल्लों) को मर्यादित कर बसानेमें उन्होंने बड़ी दूरदर्शितासे काम लिया। इन्होंने संधिविग्राहक और रक्षासचिव व सेनापति आदि पदोंको भी दक्षतासे संभाला। मंत्री कर्मसिंह राव लूणकरणजी के समय नारनौलके युद्धमें काम आये थे। राव जयतसीजीके समय मंत्री नगराजने शेरसाहका आश्रय लेकर खोये हुए बीकानेर राज्यको मालदेव (जोधपुर नरेश) से पुनः प्राप्त किया। इन्होंने अपनी दूरदर्शितासे शत्रुकी चढ़ाईके समय राजकुमार कल्याणमल्लको सपरिवार सरसामें रखा और राज्यको पुनः प्राप्तकर बादशाहके हाथसे राव कल्याणमल्लको राजतिलक करवाया। मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रने राव कल्याणमल्लजीके दुसाध्य मनोरथ—जोधपुरके राजगवाक्षमें बैठकर कमलपूजा (पूर्वजोंको तर्पण) करने—को सम्राट अकबरसे कुछ समयके लिए जोधपुर राज्यको पाकर, पूर्ण किया। राव कल्याणमल्लने सन्तुष्ट होकर मंत्रीश्वरसे मनोवांछित मांगनेकी आज्ञा दी तो धर्मप्रिय मंत्रीश्वरने अपने निजी स्वार्थके लिए किसी भी वस्तुकी याचना न कर जीवदयाको प्रधानता दी और बरसातके चार महीनोंमें तेली, कुम्हार और हलवाइयोंका आरंभ वर्जन, "माल" नामक व्यवसायिक कर के छोड़ने एवं भेड़, बकरी आदिका चतुर्थांश कर न लेनेका वचन मांगा। राजाने मंत्रीश्वरकी निष्पृहतासे प्रभावित होकर उपर्युक्त मांगको स्वीकार करनेके साथ बिना मांगे प्रीतिपूर्वक चार गांवोंका पट्टा दिया और फरमाया कि जबतक तुम्हारी और मेरी संतति विद्यमान रहेगी तब तक ये गांव तुम्हारे वंशजोंके अधिकृत रहेंगे।

मंत्रीश्वर कर्मचन्द्र सन्धि विग्रहादि राजनीतिमें अत्यन्त पटु थे। उन्होंने अपने असाधारण बुद्धि वैभवसे सोजत समियाणाको अधिकृत किया, जालौरके अधिपति को वशवर्त्ती कर अर्बुद-गिरिको अधिकृत कर लिया। महाराजा रायसिंह से निवेदन कर चतुरंगिणी सेनाके साथ हरप्पामें रहे हुए बलोचियों पर आक्रमण कर उन्हें जीता[१]। वच्छावत वंशावलीमें लिखा है कि मन्त्रीश्वरने शहरको उथल कर जाति व गोत्रोंको अलग अलग मुहल्लोंमें बसाकर सुव्यस्थित किया। रायसिंहजीके साथ गुजरातके युद्धमें विजय प्राप्त करके सम्राट् अकबरसे मिले। जब सम्राटने प्रसन्न होकर मनचाहा मांगनेका कहा तो इन्होंने स्वयं अपने लिए कुछ भी न मांग अपने स्वामी राजा रायसिंहको ५२ परगने दिलाए।

सं० १६४७ के लगभग महाराजा रायसिंहजी की मनोगत अप्रसन्नता जानकर मंत्री कर्मचन्द्र अपने परिवारके साथ मेड़ता चले गए। इसके पश्चात् वैद मुहता लाखणसीजी के वंशज मुहता ठाकुरसीजी दीवान नियुक्त हुए। दक्षिण-विजयमें ये महाराजाके साथ थे, महाराजा ने प्रसन्न होकर इन्हें तलवार दी और भटनेर गांव बख्शीस किया[२]।

महाराजा सूरसिंहजीने मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्रके पुत्र भाग्यचन्द्र लक्ष्मीचन्द्रको बड़े अनुरोधसे बीकानेर लाकर दीवान बनाया, कई वर्ष तक तो वे यहाँ सकुशल रहे पर सं० १६७६ के फाल्गुनमें

१—कर्मचन्द मंत्रिवंश प्रबन्ध देखिए।

२—"ओसवाल जातिका इतिहास" ग्रन्थमें विशेष ज्ञातव्य देखना चाहिए।

महाराजाने कुपित होकर १००० आदमियोंकी सेनाका घेरा इनकी हवेलीके चारों तरफ डाल दिया जिससे इनका सारा परिवार काम आ गया इस सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए हमारी "युगप्रधान श्रीजिनचन्द्रसूरि" पुस्तक देखनी चाहिए।

इसके पश्चात् महाराजा कर्णसिंहजीके समय कोठारी जीवणदास सं० १७०१ में पूगळ विजयके अनन्तर वहांके प्रबन्धके लिए रहे थे। महाराजा अनूपसिंहजीका मनसब (दिल्ली जाकर) दिलानेका उद्योग कोठारी जीवणदास और वैद राजसीने ही किया था[1]। कोठारी नैणसीके इनके समयमें मंत्री होनेका उल्लेख विज्ञप्तिपत्रमें[2] आता है। सं० १७३६ में लाभवर्द्धनने लीलावती गणितकी चौपाई इन्हींके पुत्र जयतसीके अनुरोधमें बनाई थी जिसमें इन्हें राज्याधिकारी लिखा है। महाराजा अनूपसिंहजी की मृत्युके अनन्तर स्वरूपसिंहकी बाल्यावस्थाके कारण राजव्यवस्थाके संचालनमें मान रामपुरिया, कोठारी नयणसी[3] के सहयोग देनेका उल्लेख बीकानेर राज्यके इतिहासमें पाया जाता है।

महाराजा सूरतसिंहके समय वैदों और सुराणों का सितारा चमक उठा। सं० १८६० में चूरू पर दीवान अमरचन्दजी सुराणा व खजान्ची मुलतानमल के नेतृत्वमें सेना भेजी गई। वहां पहुंच कर इन्होंने २१०००) रुपये चूरूके स्वामीसे वसूल किये। सं० १८६१ में जाब्तार खाँ भट्टीने, जो कि भटनेर का किलेदार था, सर उठाया तो महाराजा ने अमरचन्दजी के नेतृत्व में ४००० सेना भटनेर भेजी। इन्होंने जाते ही अनूपसागर पर अधिकार कर लिया और पांच महीने तक घेरा डाले रहने से जाब्तारखाँ को स्वयं किला इन्हें सुपुर्द कर चला जाना पड़ा। इस वीरतापूर्ण कार्यके उपलक्ष में महाराजाने इन्हें पालकी की इज्जत देकर दीवानके पदपर नियुक्त किया। सं० १८६५ में जोधपुर नरेश मानसिंह ने दीवान इन्द्रचन्द्र सिंघीके नेतृत्व में ८०००० सेनाके साथ बीकानेर पर चढ़ाई की, तब राजनीतिज्ञ अमरचन्दजी सेना लेकर उलटे आक्रमणार्थ जोधपुर गये और बड़ी बुद्धिमानी और वीरतासे जोधपुरी सेनाके माल-असबाब को लेकर बीकानेर लौटे। जोधपुरी सेना २ महीने तक छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़ती हुई गजनेर के पास पड़ी रही। इसके बाद ४००० सेनाको लेकर जोधपुर से लोढा कल्याणमल आया। अमरचन्दजी उसका सामना करने के लिये ससैन्य गजनेर गये। उनका आगमन सुनकर लोढाजी कूच करने लगे पर अमरचन्दजीने उनका पीछा करके युद्धके लिए बाध्य किया और बन्दी बना लिया। सं० १८६६ में बागी ठाकुरोंका दमन कर अमरचन्दजी ने उन्हें कठोर दण्ड दिया। एवं सांडवे के विद्रोही ठाकुर जैतसिंह को पकड़ कर ८००००) रुपये जुर्मानेका लिया। सं० १८६६ में मैणासर के बीदावतों पर आक्रमण कर वहांके ठाकुर रतनसिंहको रतनगढ़ में पकड़ कर

१—रा० ब० पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा लिखित बीकानेर राज्यका इतिहास।

२—यह विज्ञप्तिपत्र सिंघी जैन ग्रन्थमालासे प्रकाशित विज्ञप्ति लेख संग्रहमें छपा है।

३—अनूप संस्कृत लाइब्रेरीमें आपके लिए लिखा हुआ एक गुटका है, जिसमें आपके पुत्रादिकी जन्मपत्रियां व स्वाध्यायार्थ अनेक रचनाओंका संग्रह है।

फांसी दी। इसी प्रकार सीधमुख आदिके विद्रोही ठाकुरों को भी दमन कर मरवा डाला। सं० १८७१ में चूरूके ठाकुर के बागी होनेपर अमरचन्दजी ने ससैन्य आक्रमण किया और चूरू पर फतह पाई। इन सब कामोंसे प्रसन्न होकर महाराजा ने इन्हें रावका खिताब, खिलअत और सवारीके लिये हाथी प्रदान किया।

इनके पश्चात् इनके पुत्र केशरीचन्द सुराणाने महाराजा रतनसिंह के समय राज्यकी बड़ी सेवाएं की। इन्होंने भी अपने पिताकी तरह राज्यके बागियों का दमन किया, लुटेरों को गिरफ्तार किया। ये राज्यके दीवान भी रहे थे। महाराजा ने इनकी सेवासे प्रसन्न होकर इन्हें समय समय पर आभूषण, ग्राम आदि देकर सन्मानित किया। अमरचन्दजी के ज्येष्ठ पुत्र माणिकचन्दजी ने भी राज्यकी अच्छी सेवा की और सरदारशहर बसाया। माणकचन्दजी के पुत्र फतहचन्दजी भी दीवानपद पर रहे और राज्यकी अच्छी सेवाएं की।

वैद परिवार में मुहता अबीरचन्दजी ने डाकुओं को वश करनेमें बुद्धिमानी से काम लिया और बीकानेर राज्यकी ओरसे देहली के कामके लिए वकील नियुक्त हुए। सं० १८८४ में डाकुओंके साथ की लड़ाई में लगे घावोंके खुल जानेसे उनका शरीरान्त हो गया। इसके पश्चात् मेहता हिन्दूमल ने राज्यकी वकालत का काम संभाला और बड़ी बुद्धिमानीसे समय-समय पर राज्यकी सेवाएं की। इन्होंने सं० १८८८ में महाराजा रतनसिंहजी को बादशाह से 'नरेन्द्र (शिरोमणि)' का खिताब दिलाया, भारत सरकार को सेनाके लिए जो २२०००) रुपये प्रति वर्ष दिये जाते थे, उन्हे छुड़वाया, एवं हनुमानगढ़ और बहावलपुर के सरहदी मामलों को बुद्धिमानी से निपटाया। सं० १८९७ में महाराजा रतनसिंहजी व महाराणा सरदारसिंहजी ने इनके घरपर दावतमें आकर इनका सम्मान बढ़ाया। स्व० महाराजा श्री गंगासिंहजी ने आपकी सेवाओं की स्मृतिमें 'हिन्दूमल कोट' स्थापित किया है। इनके लघु भ्राता छोगमलजीने सरहदी मामलों को सुलझा कर राज्यकी बड़ी सेवाएं की।

वेदों और सुराणोंमें और भी कई व्यक्तियोंने राज्यके भिन्न-भिन्न पदोंपर रहकर बड़ी सेवाएं की। जिनके उपलक्ष में राज्यकी ओरसे उन्हें कई गांवोंकी ताजीमें और पैरोंमें सोनेके कड़े मिलना, राज्यकी ओरसेविवाहादि का खर्च पाना, मातमपुरसी में महाराजाका स्वयं आना आदि कार्यो द्वारा सम्मानित होना उनके अतुलनीय प्रभावका परिचायक है। हिन्दूमलजीको व उनके पुत्र हरिसिंहजीको भी 'महाराव' का खिताब राज्यकी ओरसे प्रदान किया गया। हरिसिंहजी ने भी राज्यकी ओरसे वकालत आदिका काम किया। इसी वैद परिवारके वंशज राव गोपालसिंहजी कुछ वर्ष पूर्व तक आबूमें बीकानेर की ओरसे वकील रहे हैं। ये हवेलीवाले वैद कहलाते हैं। इस परिवार को ताजीम आदि-गांव मिले हुए हैं।

बीकानेर के बैद परिवारमें 'मोतियों के आखावाले' वैदोंका भी राज्यकी सुव्यवस्था में अच्छा हाथ रहा है। इस परिवारके प्रमुख पुरुष राव प्रतापमलजी व उनके पुत्र राव नथमलजी ने महाराजा सूरतसिंहजी व रतनसिंहजी के राज्यकालमें अच्छी सेवायें की। इन पिता-पुत्रको भी

महाराजा साहबने 'राव'का खिताब, गांव ताजीम, सिरोपाव आदि प्रदान किये। राव प्रतापमलजीका केवल बीकानेर में ही नहीं किन्तु जोधपुर, जयपुर और जैसलमेर आदिके दरबारमें भी अच्छा सम्मान था। इनको कई खास रुक्के भी मिले हुए हैं। राव प्रतापमलजी ने प्रताप सागर कुँआ, प्रतापेश्वर महादेव, प्रताप बारी आदि बनवाये। महाराजा रतनसिंहजी स्वयं इनके घर पर गोठ अरोगने आते थे। महाराजा ने इनके ललाट पर मोतियों का तिलक किया था, इसीलिये ये 'मोतियों के आखा (चावल) वाले बैद कहलाते हैं[1]।

महाराजा सरदारसिंहजी व डूगरसिंहजी के राज्यकालमें मानमलजी राखेचा, शाहमलजी कोचर, मेहता जसवन्तसिंहजी, महाराव हरिसिंहजी बैद, गुमानजी बरड़िया, साह लक्ष्मीचन्दजी सुराणा, साह लालचन्दजी सुराणा, साह फतेहचन्दजी सुराणा, राव गुमानसिंह बैद, धनसुखदासजी कोठारी आदिने सैनिक, आर्थिक राजनैतिक आदि क्षेत्रोंमें अपूर्व सेवाएं की तथा इनमेंसे कई राज्यकी कौंसिलके सदस्य भी रहे। महाराजा गंगासिहजी के राज्यकालमें मेहता मंगलचन्दजी राखेचाने कौंसिलके सदस्य रहकर राज्यकी सेवायें की। महाराजा डूंगरसिंहजीको महाराजा सरदारसिंहजी के गोद दिलवानेमें गुमानजी बरड़िया का प्रमुख हाथ था। इन्हें भी कई खास रुक्के एवं गांव आदि मिले हुए हैं।

महाराजा गंगासिहजी के राज्यकालमें मंगलचन्दजी राखेचा के अलावा सेठ चांदमलजी ढड्ढा सी० आई० ई० रायबहादुर शाह मेहरचन्दजी कोचरने रेवेन्यु कमिश्नर रहकर, शाह नेमचन्दजी कोचर ने बड़े कारखानेमें अफसर रहकर खजानेमें शाह मेघराजजी खजान्ची मेहता लूणकरणजी कोचरने नाजिम रहकर, मेहता उत्तमचन्दजी कोचर एम० ए० एल० एल० बी० डिप्यूटी जज हाईकोर्ट ने राज्यकी सेवा की। बीकानेर राज्यकी सेवा करनेमें विद्यमान उल्लेखनीय व्यक्ति ये हैं—मेहता शिवबक्षजी कोचर रिटायर्ड अफसर जकातमंडी, शाह लूणकरणजी कोचर अफसर बड़ा कारखाना, मेहता चम्पालालजी कोचर बी० ए०, एल० एल० बी० नायब अफसर कन्ट्रोलर ऑफप्राइसेज, सरदारमलजी धाडीवाल अफसर खजाना, लहरचंदजी सेठिया एम० एल० ए० बुधसिंहजी बैद रिटायर्ड अफसर देवस्थान कमेटी आदि इनके अतिरिक्त और भी कई ओसवाल सज्जन तहसीलदार, लेजिस्लेटिव एसेम्बलीके सदस्य आदि हैं[2]।

बीकानेर नरेश और जैनाचार्य

राठौड़ वंशसे खरतर गच्छका सम्पर्क बहुत पुराना है। वे सदासे खरतरगच्छाचार्योंको अपना गुरु मानते आये हैं अतः बीकानेर के राजाओं का खरतर गच्छाचार्यों का भक्त होना स्वाभाविक ही है। साधारणतया राजनीति में हरेक धर्म और धर्माचार्यों के प्रति आदर दर्शाना आवश्यक होता है अतः अन्य गच्छोंके श्रीपूज्यों एवं यतियोंके प्रति भी बीकानेर

---

१ राव प्रतापमलजी के वंशजों की बहीमें इसका विस्तृत वर्णन है।

२ अब बीकानेर राज्यका राजस्थान प्रान्तमें विलय हो गया है। इसमें श्रीयुक्त चम्पालालजी कोचर सिखरचन्दजी कोचर, भंवरलालजी बैद आदि विभिन्न पदोंपर राजस्थान की सेवा कर रहे हैं।

नरेशोंका उचित आदर भी सब समय रहा है। अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं एवं अन्य कई कारणोंसे भी उन्होंने कई यतियोंको अधिक महत्व दिया है। यहाँ इन सब बातोंका संक्षिप्त विवरण दिया जा रहा है।

बीकानेर नरेशोंमें सर्वप्रथम महाराजा रायसिंहजी के युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजीके भक्त होनेका उल्लेख पाया जाता है। सं० १६३६ में मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र की प्रार्थनासे सम्राट अकबरके पाससे सीरोहीकी १०५० जैनमूर्त्तियें आप ही लाए थे। सं० १६४१ में युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजीका लाहोरमें मंत्री कर्मचन्द्रजी ने युगप्रधान पदोत्सव आपकी आज्ञा प्राप्त करके किया था इसका उल्लेख आगेके प्रकरणमें किया जायगा। इस उत्सवके समय कुंवर दलपतसिंह के साथ महाराजाने कई ग्रन्थ सूरिजी महाराज को वहरा कर उनके प्रति अपनी आदर्श भक्तिका परिचय दिया था। इनमें से अब भी कई प्रतियाँ भण्डारोंमें प्राप्त हैं। कविवर समयसुन्दरजी आचार्यश्री के प्रमुख भक्त नरेशोंमें आपका उल्लेख इस प्रकार करते हैं—

"रायसिंह राजा भीम राउल सूर नइ सुरतान।
बड़-बड़ा भूपति वयण मानै दियै आदर मान। गच्छपति०।"

उनके पट्टधर श्रीजिनसिंहसूरिजी का भी महाराजा से अच्छा सम्बन्ध था। इसके पश्चात महाराजा करणसिंहजी के दिए हुए बड़े उपासरे आदि के परवाने पाये जाते हैं। विद्या-विलासी महाराजा अनूपसिंहजी का तो श्रीजिनचन्द्रसूरिजी एवं कविवर धर्मवर्द्धन आदिसे खासा सम्बन्ध था। कविवर धर्मवर्द्धनजी ने महाराजा के राज्याभिषेक होनेके समय अनूप-सिंहजीका राजस्थानी भाषामें गीत बनाया था। श्री जिनचन्द्रसूरिजीने अनूपसिंहजी को कई पत्र दिये थे जिनमें से कुछ पत्रोंकी नकल हमारे संग्रहमें है[1]। महाराजा अनूपसिंहजी के मान्य यतिवर उदयचन्द्रजी का "पाण्डित्य दर्पण" ग्रन्थ उपलब्ध है। महाराजा अनूपसिंहजी के पुत्र राजकुमार आनन्दसिंहजीने बहुत आदरसे खरतर गच्छके यति नयणसीजीसे अनुरोध कर सं० १७८६ विजयादशमीको भर्तृहरिकृत शतकत्रयका हिन्दी गद्य-पद्यानुवाद कराया जिसकी प्रति हमारे संग्रहमें व "अनूप संस्कृत लाइब्रेरी" में विद्यमान है। सं० १७५२ में महाराजा अनूपसिंहजी ने सगरगढ़से खरतर गच्छीय संघको श्रीपूज्यजी की भक्ति करने के प्रेरणात्मक निम्नोक्त पत्र दिया :—

स्वस्ति श्री महाराजाधिराज महाराजा श्री अनूपसिंहजी वचनात् महाजन खरतरा ओस-वाल जोग्य सुप्रसाद वांचजोजी तथा श्रीपूज्यजी श्री बीकानेर चौमासे छै सो थे घणी सेवा भगत करजो काण कुरब राखजो सं० १७५२ आषाढ़ सुदि १ मुकाम गढ़ सगर।

महाराजा अनूपसिंहजी समय-समय पर श्री जिनचन्द्रसूरिजी को पत्र दिया करते थे जिनमेंसे २ पत्र हमारे संग्रहमें विद्यमान है जिनकी नकल यहाँ दी जाती है :—

१—इन पत्रोंकी नकलें हम जैन सिद्धान्त भास्करमें प्रकाशित कर चुके हैं।

(१)

स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज महाराज श्रीमदनूपसिंहप्रभुवर्याणां श्रीमज्जिनदेवभजनावाप्तसकल-जिनेन्द्र ज्ञानवैभवेषु तृणीकृतजगत्सु सकल जैनाभिवंदितचरणेषु श्रीपूज्यजिनचन्द्रसूरेषु वंदनाततिनिवेदकमदः पत्रं विशेषस्तु पूर्वं सर्वदैव भवदीयः कश्चित् यतिवरः अस्माकं सार्थे स्थितः इदानीमत्र भवदीयः कोपि नास्ति भवद्भिरपि तूष्णीं स्थितमस्ति तत्किमिति अतः परं एकः उपाध्यायः पांचाह्वयः अथवा जयतसी एतयो र्मध्ये यः कश्चिदायाति सत्वरं प्रेषणीयः चातुर्मास्यं अत्रागत्य करोति तथा विधेयं अस्मिन्नर्थे विलंबो न विधेयः किमधिक मिती पोष शु० ८

(२)

श्री लक्ष्मीनारायणजी

स्वस्ति श्री मन्महाराजाधिराज महाराज श्रीमदनूपसिंह प्रभुवर्याणां श्रीमत्सकल कार्य करण निपुणता पराङ्मुख वैराग्यपवमान संदोह वशंवद वशीकार संज्ञ वैराग्य भोग्य कैवल्येषु विषम विषय दोष दर्शन दूषित प्रपंच रचना चुलुकी करण कुम्भ संभव विभवेषु समस्त विद्या विद्योतमान विग्रहेषु श्री मद्भट्टार६ जिनचन्द्रसूरिषु वन्दनाप्रणाम सूचकोयं जांघिकः। शमिह श्री रमेश करुणा कटाक्ष सन्दोहैः विशेषस्तु माला श्रीमद्भिः प्रेषिता सा अस्मत्करगता समजनि अन्यदपि यत्समीचीनं वस्तु अस्मद् योग्यं भवति चेदवश्यं प्रेषणीयं। अन्यच्च श्रीमतां प्रावरणार्थं वस्त्रं दापितमस्ति तद्ग्राह्यं किं च इन्द्रभाण मुद्दिश्य भवद्विषयिकोदंताः लिखिताः संति सोप्य स्मत्पत्रानुसारेण श्रीमतां समाधानं करिष्यति। श्रीमतां महत्वं मानोन्नतिं च विधास्यति। तथा च श्रीमदीयः कश्चित्कार्य्य विशेषो ज्ञाप्यः। श्रा० व० ३

महाराजा सुजाणसिंहजी भी श्रीपूज्य श्रीजिनसुखसूरिजी व तत्कालीन विद्वान यतिवर्य्यों को बड़ी श्रद्धासे देखते थे। हमारे संग्रहमें आपके श्री जिनसुखसूरिजी को दिये हुए दो पत्र हैं जिनकी नकल नीचे दी जा रही है :—

श्री लक्ष्मीनारायणो जयति

श्रीमत्तपः शाल विशाल वाच· सौजन्य धन्य द्युति कीर्त्तिभाजः। प्रताप संतापितपो विधाता राजन्ति राजयति वृन्द राजाः ॥१॥ पद्भारती भृज्जिनसौख्यसूरि नामान अत्यद्भुत शोभमानाः। श्री धर्मसिंहै परितः पुराणै र्मुनीशमुख्यैः प्रसरन्मनीषैः ॥२॥ श्री राजसागरै विद्वद्वंस सेवित सागरैः। अन्यैः सत्कविभिः शास्त्र कला संकुल कोविदैः ॥३॥ त्रिभिर्विशेषकम्।

तदुचितं प्रहितं छदनंमुदा मरु महीश सुजाणनरेश्वरैः।
सपरिवार सुमन्त्रि सुतैर्हितत्प्रणति संततयस्त्ववधार्य्यताम् ॥४॥

आर्या :—सदा स्वीय सुसेवकानां कार्यो परिष्टात्प्रचुरानुकम्पा।
संपालनीया सरसाभृशं मुच्छ्रश्व हृदि स्नेह सुधा प्रपूर्णैः ॥५॥
कुशल मत्र सदवहि वर्त्तते शुभवतां भवता मनुकम्पया।
मनसि कामयते भवतां हितं भविक मेव सुसेवक सज्जनः ॥६॥

अत्रोचितं कार्य वरं सु पत्रेऽविचार्य्य चोत्सार्य्य समग्र शंकाम् ।
विलिख्य संप्रेषणतो स्मदीये स्वान्ते भृशंतोष भृतो भवन्तु ॥७॥
अथान्येषां श्रीमतां सेवकानां प्रीतिपूर्वं प्रणति पद्यानि लिख्यन्ते ।
खवासः सुपद्येन चानन्दरामोऽलिखत् संनतिं सन्मतः सद्दलेस्मिन् ।
पर प्रेम पूरेण पूरेणुकाद्राक्पुनः पाद शुद्धा सु संपादनीया ॥८॥

अतिशय मृदुभावाच्छोभने प्रीति पत्रे लिखति च बुध पाण्डे प्रेमरामः प्रणामम् ।
निज हृदि इति कृत्वा सेवकः शोभनस्यादयमपि मयि शश्वत्सुप्रसादो विधेयः ॥६॥
नृपमनुगतो जात्या यो सौश्रितः पडिहारतां लिखति च दले लक्ष्मीदासोलसल्ललिताक्षरैः ।
विमल मनसा प्रह्वी भावो ममाप्यवधार्य्यतां स्वहृदिचमुदाज्ञेयः स्वामिन्सदा निज सेवकः ॥१०॥

संवन्नवर्षि स्वर सोम युक्ते मासे शुभे हैमन मार्गशीर्षे ।
दलेऽमले पञ्चमके तिथौ सद्दिने रवौ विष्णुगिरि र्विपश्चित् ॥११॥
नृपाज्ञया काव्य वरैः पलाशं यतीश योग्यं सविलासमेतत् ।
लिपी चकार क्रमतोत्र पत्रे सर्वैर्हि तत्संनतयोवधार्याः ॥१२॥ युग्मम् ।

अन्योपियोमत्स्मारको भवेत्तं प्रति प्रणतिर्वक्तव्या । अत्राहर्दिवमस्मदादिभिर्भवदीय स्मरण मनुष्ठीयतेऽलं विदुषां पुरः प्रचुर जल्पनेन । यतिवर नयनसिंहान् प्रति पुनरभिवादये ।

श्री : । श्री : । श्री : ।

(२) श्री रामो जयति तराम्

स्वस्ति श्रीमत्सकल गुण गण गरिष्ठ विशिष्ट वरिष्ट विद्या विद्योतितानां षड्भारती भाना च्छादिताज्ञान तिमिर विभातानां भ्राजमान भूरि भूमीश पाणि पल्लव सपल्लव पादपद्मानां विविधोत्तम मुकुटमणि निकरातप नीराजित चरण कमलानामनेक सेवकलोक वृन्द मौलि स्तवक स्तुतार्चित क्रम युगलानां विविध कीर्ति मूर्त्ति संमोहित भूमंडलाखण्ड तलानां विमल कला-कलित ललित मतिमत्पुरःसराणां नाना यतिवर निकर निषेवित पूर्वापर पार्श्व भागानां श्री वंदारु यतीश वृन्द वृन्दारकेन्द्राणाम्म् श्री श्री श्री श्री श्री जिनसुखसूरीणां पादपद्मोचितंपत्रमदः श्री विक्रम-पुरतः प्रेषितवंत श्रीमन्महाराजाधिराज महाराज श्रीसुजाणसिंहास्तदनारताहर्दिव प्रणति तयोऽवधार्याः परा प्रीतिः पार्या नवरतानुकम्पा संपालित तरांग संदोहा कार्या । अत्रत्याः समाचारा. श्रीमतां सदा सानुग्रह दृष्ट्या विशिष्ट शुभ युताः श्रीमतास्मदत्र भवतां सर्वदा सुख सेवधि भूता भूतयो भवंत्विति नित्यं मन्यामहे । भवंतः पूज्या स्था स्मदुपरि सर्वदा कृपा रक्षणतो-धिका रक्षणीया । अत्रोचितं कार्य जातं पत्रेलिखित्वा प्रेषणीयं । । श्रीः ॥

चौपई ॥ सबगुण ज्ञान विशेष विराजै, कविगण ऊपरि घन ज्यों गाजै
धर्मसीह धरणीतल मांही, पंडित योग्य प्रणति दल तांही ॥ १ ॥
दोहा—गुणसागर गणि प्राज्ञ पणि पंडित जोतिष हीर ।
अवर कलायुत राज कवि सागर राज गभीर ॥ १ ॥

खवास आणंदराम रो नमस्कार वाचिज्यो अपरं च पांडे पेमराजजी रो नमस्कार अवधारिजो। गोसाइं विष्णुगिरि को वन्दन अवधारिजो कृपा स्नेहो रखणीयो। अत्र भवता मत्र भवतामा जिगिमिषेच्छुभिरभिध्यानं विधीयते स्माभिः।

॥ संवत्सप्तदश शताधिके कोनाशीति (१७७६) तमे माघासित दल दुर्गा तिथाविदं लिपि कृतं पत्रम्। श्री :।

पत्रं महाराजान्तिके त्वरयालिखितं ततोत्रा तंत्र निररयं।

इनके पश्चात् महाराजा जोरावरसिंहजी उत्तराधिकारी हुए वे भी अपने पूर्वजों की भांति खरतराचार्यों के परम भक्त थे। उन्होंने नवहर से निम्नोक्त पत्र बीकानेर में स्थित यति लक्ष्मी चन्द्रजी को दिया :—

स्वस्ति श्रीमंत मियत्तयाऽप्रमित महिमानं परमात्मानमानम्य मनसा श्री नवहराज्जोरावर सिंहो विक्रमपुर वास्तव्य यति लक्ष्मीचन्द्रेषु पत्रमुपढौकयते स्वकुशलोदंतमुदाहरति तत्रत्यं च कामयतेऽथ भवद्भि विसृष्टंयति प्रकृष्टैरुत्कृष्ट गुण निकर भृद्भि शिष्टैः श्च्छदन मंतःकरणे मामकीने भवत्संगममिव शर्म समुत्पादय हृद्य सत्पद्यै रलंकृतं शस्त शंसि नयन गोचरी कृत्य सत्पद्य योजन कला कुशलान् भवतोऽजी गणम् तद्गत रहस्य च दवीयद्गमनं रूपं कर्ण जाह मानीय चिन्ता पारावारे मन्मनो निमग्नं तथात्र भवतां स्थिति रभि विश्चेत्तर्हि कर्हि चिदावयो स्संगममप्यभविस्यत् सांप्रतंतु तद् व्यवधानितं दृष्यते परं पत्र प्रत्यर्पणे दवीयसि तिष्टतां निरालस्येन भवतायतितव्यं तथोप प्राप्त रूपे ग्रन्थाभ्यासे वासक्तं प्रत्यहं भवितव्यं मन्तव्यं मिति च मिति मधु कृष्ण त्रयोदशी कर्मवाट्यां ॥

इन महाराजाने उपर्युक्त यति लक्ष्मीचन्द्रजी के गुरु यति अमरसीजी[१] की सुख सुविधाके लिए जो आज्ञापत्र भेजा उसकी नकल इस प्रकार है :—

छाप—

॥ महाराजाधिराज महाराजा श्री जोरावरसिंहजी वचनात् राठौड़ भीयासिंहजी कुशलसिंहजी मुंहता रघुनाथ योग्य सुप्रसाद वांचजो तिथा सरसै में जती अमरसीजी छै सु थानै कामकाज कहै सु कर दीज्यो ऊपर……(सरो) घणो राखज्यो फागुण सुदि ४ सं० १७९६

इसके पश्चात् महाराजा गजसिंहजी का भी जैन यतियों से सम्बन्ध रहा है। उपाध्याय हीरानन्दजी के महाराजा को दिये हुए पत्र की नकलका अर्द्धभाग हमारे संग्रहमें है। उनके पुत्र महाराजकुमार राजसिंह जो पीछे से सं० १८४४ में बीकानेर की राजगद्दी बैठे थे, उन्होंने सं० १८४० में श्रीपूज्य श्रीजिनचन्द्रसूरिजी को एक पत्र दिया जिसकी नकल इस प्रकार है :—

१—ये उदयतिलक जी के शिष्य थे, आपका दीक्षा नाम अमरविजय था। आप सुकवि थे, आपकी कई रचनाएं उपलब्ध है। इन्हींकी परम्परामें कुछ वर्ष पूर्व स्वर्गवासी हुए उपाध्याय श्री जयचन्द्रजी यति थे।

श्री लक्ष्मीनारायणजी भगत राजराजेश्वर महाराजा शिरोमण माहाराजाधिराज माहाराज कुंवार श्रीराजसिंहजीस्य मुद्रका।

श्रीरामजी

॥ स्वस्ति श्री जंगम जुगप्रधान भट्टारक श्री जिणचन्दसूरिजी सूरेश्वरान् महाराजाधिराजा म्हाराज म्हाराज कुंवार श्री राजसिंघजी लिखावतु निमस्कार वांचजो अठारा समाचार श्री जीरे तेज प्रताप कर भला छै थांहरा सदा भला चाहीजै अप्रंच थे म्हारे पूज्य छौ थां सिवाय और कोई बात न छै सदा म्हांसूं कृपा राखौ छौ जिणसुं विशेष रखाजो और थे चौमासो ऊतरियां सताब बीकानेर आवजो म्हानुं थांसुं मिलणरी चाहा छै अठारी हकीकत सारी गुरजी तेजमाल नाहटै मनसुख रे कागद सुं जाणजो सं० १८४० रौ मिती काती वद १ मुकाम गांव देसणोक ऽ ऽ

१ जंगेम जुगे प्रध......जिणचन्दसूरजी सूरेश्वरान्।

महाराजा सूरतसिंह जैनाचार्यों व साधु-यतियोंके परम भक्त थे। श्रीमद् ज्ञानसारजी को तो आप नारायण-परमात्माका अवतार ही मानते थे। उनको दिये हुए आपके स्वयं लिखित पत्रों में से २० खास रुक्के हमारे संग्रहमें हैं, जिनमें श्रीमद्के प्रति महाराजाकी असीम भक्ति पद पद पर झलक रही है पाठकोंकी जानकारीके लिए दो एक पत्रोंका अवश्यक अंश यहां उद्धृत किया जाता है :—

"स्वस्तिश्री सर्व ओपमा विराजमान बाबैजी श्री श्री श्री श्री श्री १०८ श्री नारायण देवजी सुं सेवग सूरतसिंहरी कोड़ एक दण्डोत नमोनारायण वन्दणा मालुम हुवै अप्रंच कृपापत्र आपरौ आयौ वांचियां सुं बड़ी खुशवखती हुई आपरे पाये लागां दरसण कियां रौ सौ आणंद हुवो आपरी आज्ञा माफक मनसा वाचा कर्मणा कर कही बातमें कसर न पड़सी आपरी इग्या माफ (क) सारी बात रो आणंद खुसी छै। नारायण री आग्यामें फेर सन्देह करसी तौ बाबाजी ऊतो नारायण रे घर रो चोर हराम हुसो जेरो अठे उठै दोयां लोकां बुरो हुसी वेनै पछै त्रिलोकीमें ठौर न छै आपरो सेवग जाण सदा कृपा महरवानी फुरमावै छै जैसुं विशेष फुरमावणरो हुकम हुसी दूजी अरज सारी धरमैनुं कही छै सु मालुम करसी सं० १८७० मिती मिगसर सुदि ६"

"आपरो दरसण करसुं पाए लागसुं ऊ दिन परम आणदरो नारायण करसी"

"आप इतरै पहला कठैइ पधारसी नहीं आ अरज छै। दूजी तरह तौ सारा मालम छै सेवगदावररी तो सरम नाराय (ण) नुं वा आपनुं छै हूंतौ आपथकां निचिंत छुं"

"आपरै उवारियां हमें उबरसुं"

महाराजा सूरतसिंहजी की भांति उनके पुत्र महाराजा रतनसिंहजी जैनाचार्यों व यतियोंके परम भक्त थे। एक बार ज्ञानसारजी महाराज जेसलमेरके महारावलजीके बार-बार आग्रह करने पर वहां जानेका विचार करते थे तब महाराजाने उन्हें रोकनेके लिए कितना भक्तिभाव

प्रदर्शित किया जिसका श्रीमद् स्वयं अपने पत्रमें—जो कि जेसलमेरमे मुंहता जोरावरमलको दिया गया था—इस प्रकार लिखते हैं—

'श्री लालचन्दजी साहिबांरे कथन सुं करनै म्हांरौ पिण मनसोबो हुंतो जेसलमेर रो आदेश इणे पिण सर्वतरै सुं करनै जेसलमेर रो ठहिरायौ इणां रो कहणै सुं म्हें पिण उठेहीज आवणो ठहरायौ। राजाधिराज काती बदि १ रे दिन को० भीमराज हस्तू मनै इसो फुरमायो एक हूं तें कनै वस्तु मांगसुं सो जरूर मनै दैणी पड़सी। मैं आ कई मैं कांगै खनै आप कंइ मांगसी पछै काती सुदि १० रे दिन हजूर पधार्या खड़ा रहि गया विराजै नहीं जदमैं अरज कीनी महाराज विराजे क्युं नहीं जद फरमायो हुं मांगू सो मनै दै तो बैसुं। जद मैं अरज करी साहिब फुरमावो सो हाजर जद फुरमायो तूं अठै सुं विहार रा परणाम करै छै सो सर्वथा प्रकार विहार कांई करण देवुं नहीं। जद मैं अरज कीनी हूं तौ बीकानेर इणहीज कारण आयौ छौ सो मने बीस बरस उपरंत अठै हुय गया सो म्हांरी चिट्ठी आज तांई कोई नीकली नहीं जद फुरमायो म्हांरौ इ पुण्य छै। जिण सुं म्हांरा विहारा रा परणाम हुवा छे सो एकबार फलोधी जासुं सो मैं आठबार अरज करी परं न मानी उपरंत मैं कह्यौ साहिबांरी सीख विना कोई जावूं नहीं जद विराज्या। पछै ओर वार्ता घड़ी ४ तांई बतलाई उठतां खड़ा रहि गया फेर फुरमायौ जौ फेर बैठ जाऊं जद मैं अरज कीनी साहिबां री सीख बिना कोई जाऊं नहीं। पछै आप पधार्या। सो माहरौ दाणौ पाणी बलवान छै तौ एकबार तौ इण वात नै फेर उथेलेसुं पछै जिसौ दाणौ पाणी इति तत्त्वम्'

इस पत्रसे स्पष्ट है कि महाराजाके आग्रहसे श्रीमद् बीकानेरमें ही रुक गये थे। इस पत्रके लगभग ८ वर्ष पश्चात् श्रीमद्का स्वर्गवास हुआ था। श्रीजिनहर्षसूरिजीके पट्टधर श्रीजिनसौभाग्यसूरिजीको महाराजा रतनसिंहजीने ही पाट बैठाया था, व जयपुर गादीके श्रीजिनमहेन्द्रसूरिजी से गच्छभेद होने पर आप श्रीजिनसौभाग्यसूरिजीके पक्षमें रहे थे। इन्होंने बड़ी दृढ़ताके साथ अपने पक्षको प्रबल कर श्रीपूज्यजीके मान-महत्त्वको बढ़ाया। महाराजाके एक परवानेकी नकल यहां दी जाती है।

छाप श्री रामजी

"श्री दीवाण वचनात् बड़े उपासरै रे श्रीपूजजी श्री श्री १०८ श्री सौभाग्यसूरजीने गुरु पदवी देय दीवी छै सु बड़ै उपासरै री पीढी सुं मरजाद रा परवाणा वा छाप रा कागद सींव रा वा सामग्री रा धरणे रा कर दिया छै तिके परवाणा मुजब सही छै और नया मरजाद मों बांध दीवी छै बड़ै उपासर री साध साधवीमें चूक पड़ जावै उण रो दुसमण मां सुं अरज करै ते सुणै नहीं श्रीपूज्यजी उवां ने दण्ड प्रायश्चित देर सुध कर लेसी कवास श्रीपूजजी री इग्या नहीं मानसी आप मुराद वेसतां फेर उवां नै परस्पर समझासी समझयां लागसी नहीं तो उब दरबार सुं अरज करासी अै साध साधवी म्हारी इग्यामें नहीं चालै छै आप मुराद वेवै छै तारा दरबार सुं वानै वठाय सिजा देसी तार वा श्रीपूजजी नै कवासी अस आपरी इग्या ओलंगा नहीं ओलंगा तो जिन इग्या रो लोपी हुवां तारां अरज कर छोडासी और साध साध्वी सहरमें भगवान रो मींदर

करासी वा गांवमें करासी तारै श्री दरबार रो हुकम छै फेरु सुं अरज करावण रो काम नहीं मास १ रु० १) चनण केसर धूप दीप रो दीया जासी जिके दिन सुं मिंदर कराया जिके दिन सुं लेखो कर दिराय देसी और बड़े उपासरै री सीरणी री मरजाद बांध दीवी छै। सो राज रो दोखवारी वा० लणायत सुं डरतो वा और गुनह वालो मुसदी सहुकार और दी कोई दुजो उपासरै शरणै जाय बेठसी तेनै श्री दरबार सुं वा० लेणायत न उठासी। उठासी तेनै दरबार सिजा देसी और श्री बीकानेर रो वसीवात सहूकार वा० दुजी पटवां श्रीपूज कीया है ते नै न मानसी जो कोई मानसी तारा श्री दरबार और किसी नै बी मानणौ पूरो साबित हुय जासी वो बानै सिजा दी जांसी इयै मरजाद मेटण री कोई चाकर अरज करसी तो परम हरामखोर हुसी इयैमें कसर नहीं पड़सी म्हांरो वचन छै। द० मुंहतो लीलाधर सं० १८६७ मीती माघ सुद १३।

महाराजा सूरतसिंहजी और रत्नसिंहजी अनेक बार श्रीमद् ज्ञानसारजी[1] के पास आया करते थे। सं० १८८६ के पत्रमें महाराजा रत्नसिंहजीने श्री पूज्यजीको लिखा है

"थे म्हांहरा शुभचिंतक छौ। पीढियां सुं लगाय थां सवाय और न छै।"

महाराजा सूरतसिंहजीका जीवराजजीको दिया हुआ खास रुका हमारे संग्रहमें है। उन्होंने अमृतसुन्दरजी को उपाश्रय के लिए जमीन और विद्याहेमजी को उपाश्रय बनवाकर दिया था, जिनके शिलालेख यथास्थान छपे हैं। यति वसतचन्दजी को महाराजा के रोगोपशांति के उपलक्षमें प्रतिदिन ।।) आठ आना देनेका ताम्रपत्र बड़े उपाश्रय के ज्ञानभंडारमें है। महाराजा दादासाहब के परम भक्त थे। उन्होंने नाल ग्राममें दादासाहब की पूजाके लिए ७५० बीघा जमीन दान की थी जिसका ताम्रशासन बड़े उपाश्रयमें विद्यमान है। महाराजा सरदारसिंहजी गौड़ी पार्श्वनाथजी में नवपद मंडलके दर्शनार्थ स्वयं पधारे और ५०) रुपया प्रति वर्ष देनेका फरमाया जिसका उल्लेख मन्दिरोंके प्रकरणमें किया जायगा। जैन मन्दिरों की पूजाके लिए राजकी ओरसे जो सहायता मिलती है उसका उल्लेख भी आगे किया जायगा।

महाराजा सरदारसिंहजीका भी जैनाचार्यों के साथ सम्बन्ध चालू था। उनके दिया हुआ एक पत्र श्रीपूज्यजीके पास है। महाराजा डूंगरसिंहजी ने मुनिराज सुगनजी महाराजके उपदेश से शिवबाड़ीके जैन मन्दिरका निर्माण करवाया था। महाराजा गंगासिंहजीने जुबिलीके उपलक्षमें श्री चिन्तामणिजी और श्री महावीरजीमें चाँदीके कल्पवृक्ष बनवाकर भेंट किये थे। खरतर गच्छके श्रीपूज्योंको राजकी ओरसे समय-समय पर हाथी, घोड़ा, पालकी, वाजित्रादि, लवाजमा तथा उदरामसर, नाल, आदि जानेके लिए रथ भेजा जाता है। श्रीपूज्यजीकी गद्दी नशीनीके समय महाराजा स्वयं अपने हाथसे दुशाला भेंट करते रहे हैं।

खरतर गच्छकी वृहद् भट्टारक शाखाके श्रीपूज्योंका बीकानेर महाराजाओं से सम्बन्ध पर ऊपर विचार किया गया है। खरतर गच्छकी आचार्य शाखाके श्रीपूज्यों एवं यतियोंकी भी राज्यमें मान मर्यादा और अच्छी प्रतिष्ठा थी पर इस विषयकी सामग्री प्राप्त न होनेके कारण

१—आपके सम्बन्धमें हमारी सम्पादित "ज्ञानसार ग्रंथावली" में विशेष देखना चाहिए।

विशेष प्रकाश नहीं डाला जा सका। कंवला गच्छ और पायचन्द गच्छके श्रीपूज्यादि से राजाओंके सम्बन्धके विषयमें भी हमें कोई सामग्री नहीं मिली अतः अब केवल लौंका गच्छकी पट्टावली में उनके आचार्यों के साथ राजाओं के सम्बन्ध की जो बातें लिखी हैं, वे संक्षेप से लिखते हैं :—

नागौरी लुंका गच्छके स्थापक आचार्य हीरागरूपजी सं० १५८६ में सर्व प्रथम बीकानेर आये। चोरड़िया श्रीचन्दजी की कोटड़ीमें वे ठहरे। इसके पश्चात् इस गच्छका यहाँ प्रभाव जमने लगा। आचार्य सदारंगजीसे महाराजा अनूपसिंह मिले थे। औरङ्गाबाद के मार्गवर्ती बोर ग्राममें मिलने पर महाराजा को सन्तति विषयक चिन्ता देख कर इन्होंने कहा था कि आपके ५ कुंवर होंगे, उनमें दो बड़े प्रतापी होंगे। महाराजा अनूपसिंहजीने अपने कुंवरोंकी जन्मपत्री के सम्बन्धमें सं० १७५३ में खास रुक्का भेज कर पुछवाया। और महाराजाकी मृत्युके सम्बन्धमें पूछने पर इन्होंने सं० १७५५ के ज्येष्ठ सुदि ६ को देहपात होनेका पहिले से ही कह दिया था। सं० १७५५ में सुजाणसिंहजी को २४ महीनेमें बीकानेर का राजा होनेका कहा था और वैसा ही होने पर इनका राज्यमें प्रभाव बढने लगा। महाराजाने इनके प्रवेशके समय राज प्रधान मन्दिर लक्ष्मीनारायणजी से संख भेजा था। इनके पट्टधर जीवणदासजीने सं० १७७८ में महाराजा से अपने दोनों उपाश्रयका परवाना प्राप्त किया। सं० १७८४ के आसपास महाराजा सुजाणसिंहजी के रसोली हो गई थी, औषधोपचार से ठीक न होने पर श्रीपूज्यजी भटनेरसे बुलाए गए और उन्होंने मंत्रित भस्म दी जिससे वे रोगमुक्त हो गए। महाराजा रत्नसिंहजीने चांदीकी छड़ी व खास रुक्का भेज कर श्रीपूज्य लक्ष्मीचन्दजी को बीकानेर बुलाया। सं० १७६५-६७ में भी महाराजा श्रीपूज्यजीसे मिले और उन्हें खमासमण (विशेष आमन्त्रपूर्वक आहार वहराना) दिया।

बीकानेरमें ओसवाल जातिके गोत्र एवं घरोंकी संख्या

बीकानेर बसनेके साथ-साथ ओसवाल समाजकी यहाँ अभिवृद्धि होने लगी। बच्छावतों की ख्यातके अनुसार पहले जहां जिसे अनुकूलता हुई, बस गये और मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रके समय के पूर्व यहां की आबादी अच्छे परिमाणमें होगई थी इससे उन्होंने अपनी दूरदर्शिता से शहरको व्यवस्थित रूपमें बसानेका विचार किया फलतः मंत्रीश्वरने नवीन विकास योजनाके अनुसार प्रत्येक जाति और गोत्रोंके घरोंको एक जगह पर बसाकर उनकी एक गुवाड़ प्रसिद्ध कर दी। इस प्रकारकी व्यवस्थामें ओसवाल समाज २७ गवाड़ोंमें विभक्त हुआ जिनमें से १३ गुवाड़ें खरतर गच्छ एवं प्रधान मन्दिर श्रीचिन्तामणिजी को और १४ गुवाड़ें उपकेश (कंवला) गच्छ और प्रधान मन्दिर श्रीमहावीरजी को मान्य करती थी इन २७ गुवाड़ोंमें पीछेसे गोत्रों आदि का काफी परिवर्तन हुआ और एक-एक गुवाड़में दूसरे भी कई गोत्र बसने लग गये जिनका कुछ आभास लगभग ५०-६० वर्ष पूर्वकी लिखित हमारे संग्रहस्थ १३-१४ गुवाड़के (मामलों की) विगत (वही) से होता है उसकी नकल यहां दी जा रही है।

अथ चिन्तामणजी खरतर गच्छ की १३ गुवाड़के नाम

१—गोलछा, खजानची, गुलगुलिया, मोणोत, रांका, छाजेड़, खटोल एक गुवाड़ छै।

२—आदु गुवाड़ भमाणी अब नाहटा, मुगड़ी, कोठारी, सुखानी, रांका, गोलछा, खटोल गुवाड़ १

३—रांगड़ीमें बोथरा, माल्लू गुवाड़ १

४—सुखाणी, भदाणी गुवाड़ १

५—पुगलिया, बोथरा, सांढ, मिनीया, छोरिया, मुकीम, सीपाणी, बडेर, साह गुवाड़ १

६—मरोटी, बुचा, बडेर, सुखलेचा, सेठी, नाडवेद, साह एक गुवाड़ बजै छै।

७—आदु गुवाड़ सिरोहिया, बांठिया, मलावत अब सेठिया, पारख, डागा, सीपानी एक गुवाड़ सेठियां री बजै छै।

८—कोठारी, कातेला, सावणसुखा, पारख, ढढा एक गुवाड़ कोठारयांरी बजै छै।

९—वेगाणी, पारख, कावड़िया, झावक, मिश्रप गुवाड़ एक बजै वेगाण्यांरी।

१०—डागा, राजाणी गुवाड़ एक ही छै दूसरी जातकी नहीं।

११—आदु गुवाड़ वेगड़ा, बाफणा, अब दसाणी, सुखाणी, लालानी, पटवा, मोणोत, लोढा, सोनावत, तातेड़, ढढा गुवाड़ १ जात ६ भेली बसै।

१२—डागा पूजांणी प्रोलवाला गुवाड़ १ छै।

१३—वच्छावत, डागा गुवाड़ १ बजै छै। ये तेरह गुवाड़ का नाम जानवा।

अथ महावीरजी कवलै गच्छकी १४ गुवाड़ां के नामः।

१—गवाड़ आदु छाजेड़, छजलानी, अब सुराणा, चोरड़िया, एक गुवाड़ सुराणारी बजै छै

२—जेठावत, गीडी गुवाड़ एक ही छै और इसी भी केवैछैके पेली अठै भी छजलानी भी रहते थे और अब बजै तो फकत सुराणां की है पिण सब भेलै हैं और गुवाड़ दो है।

३—गवाड़ दांती सुराणा की।

४—गवाड़ सुनावत, मलावत, आदु अब अचारज बिरामण रहते हैं कई सुनावत भी है।

५—गवाड़ अभाणी, दफतरी, वगसी, मुगड़ी गुवाड़ १ अभाण्यांरी।

६—गवाड़ आंचलियां की आदु अब कावड़िया, वगसी गुवाड़ एक बजैछै बीरामण बहोत है उसमें।

७—गवाड़ बेद मुंहता की एक ही गुवाड़ छै।

८—गवाड़ सैसै बावै पासै पुगलिया, सीपाणी, आदु अब कंदोई मेसरी ढूंढनी।

९—सीपाणियां री।

१०—गवाड़ चोधरी आदु अब बांठिया, बरढिया, पुगलिया और मेसरी कोठारी।

११—गवाड़ आसाणी, झबरखां की।

१२—गवाड़ आदु धाड़ेवाल, रामपुरिया, राखेचा, मोणोत अभी है और गुवाड़ रामपुरियां राखेचांरी बजै छै।

१३—गुवाड़ वैद वागचारांरी प्रोल जिण मांयसुं कोचर निकल कै जाय गूजरां में बस्या और न्यारो कराय कै अपनी गुवाड़ बसाई। इण प्रोलमांहे सुं नीकल्योड़ा है सो जानना।

१४—गुवाड़ सींगीयां री चोकरी आदु अब सुराणा, चोरड़िया, सीपाणी इत्यादिक है।

ये चवदै गुवाड़ का नाम जानना

इन सूचियों में ओसवाल सामज के गोत्रोंकी नामावली संक्षेप से उपलब्ध होती है, इनमें से वर्त्तमान में भमाणी, बेगड़ा, आंचलिया, लालाणी, छजलाणी, चौधरी, बागचार के एक भी घर अवशेष नहीं है। शिलालेख आदि अन्य साधनों के अनुसार यहां लिगा, रीहड़, फसला आदि गोत्रोंके घर भी थे, पर उनमेंसे अब एक भी नहीं रहा। वर्त्तमान समयके गोत्रोंकी सूची यह है :—

१	अभाणी	२१	झाबक	४०	बांठिया	५६	रामपुरिया
२	आरी	२२	डागा	४१	बेगाणी	६०	लसोक
३	आसाणी	२३	ढढ्ढा	४२	वैद	६१	लूणिया
४	करणावट	२४	तातेड़	४३	बोथरा	६२	लूणावत
५	कातेला	२५	दफ्तरी	४४	बुचा	६३	लोढा
६	कावड़िया	२६	दस्साणी	४५	बोरड़	६४	श्रीश्रीमाल
७	कोचर	२७	दूगड़	४६	भणसाली	६५	सांड
८	कोठारी	२८	धाड़ीवाल	४७	भांडावत	६६	सावणसुखा
९	खटोल	२९	नाहटा	४८	भुगड़ी	६७	सिंघी
१०	खजाञ्ची	३०	पटवा	४९	भूरा	६८	सिरोहिया
११	गिड़ीया	३१	पारख	५०	भोपाणी	६९	सीपाणी
१२	गैलड़ा	३२	पुगलिया	५१	मरोटी	७०	सुखलेचा
१३	गुलगुलिया	३३	फलोधिया	५२	माल्लू	७१	सुखाणी
१४	गोलछा	३४	बगसी	५३	मिन्नी	७२	सुराणा
१५	गंग	३५	बच्छावत	५४	मुकीम	७३	सेठी
१६	चोपड़ा कोठारी	३६	बडेर	५५	मुणोत	७४	सेठिया
१७	चोरड़िया	३७	बधाणी	५६	मुसरफ	७५	सोनावत
१८	छाजेड़	३८	बरड़िया	५७	रांका	७६	हीरावत
१९	छोरिया	३९	बहुरा	५८	राखेचा	७७	ललवाणी
२०	झंवरी					७८	दुधेड़िया

घरोंकी संख्या

ओसवालोंका धर्म प्रेम शीर्षकमें दिये हुए पौषध आदि धर्मकृत्य करनेवाले श्रावकों की संख्यासे तत्कालीन जनसंख्या एवं घरोंकी संख्या का कुछ अनुमान किया जा सकता है। निश्चित

रूपसे जो लाहणी-पत्रक से तत्कालीन घरोंकी संख्या ज्ञात होती है लाहण-पत्रकके अनुसार घरोंकी संख्या तीन हजारके लगभग है और वस्तोपत्रक जो कि संवत् १६०५ पोष बदि १ को सोजत निवासी सेवक कस्तूरचन्दने लिखाया है उसमें घरोंकी संख्या २७०० लिखी है पर वर्त्त-मानमें उसका बहुत कुछ ह्रास होकर अब केवल १५०० के लगभग घर ही रह गये हैं।

बीकानेरमें रचित जैन-साहित्य

बीकानेरके बसानेमें ओसवाल--जैन-समाजका बहुत महत्त्वपूर्ण हाथ रहा है यह बात हम पहले लिख चुके हैं। ओसवालोंके प्रभुत्वके साथ साथ यहां उनके धर्मगुरुओंका अतिशय प्रभाव होना स्वाभाविक ही था, फलतः यहां खरतर गच्छके दो बड़े उपाश्रय (भट्टारक, आचार्योंकी गद्दी), उपकेश गच्छका उपाश्रय (जिनके माननेवाले वैद होनेके कारण प्रधानतः वैदोंका उपाश्रय भी कहलाता है) एवं कँवला गच्छके नामसे भी इसकी प्रसिद्धि है, पायचन्दगच्छके दो उपाश्रय यहाँ विद्यमान हैं। जिनमें उस गच्छके श्रीपूज्यों-गच्छनेताओंकी गद्दी है। अब उनमें से केवल खरतर गच्छके श्रीपूज्य ही विद्यमान हैं अवशेष गद्दियें खाली हैं, ये सब उपाश्रय संघके हैं जिनमें यतिलोग रहते हैं। सिंघीयोंके चौकमें सीपानियोंके बनवाया हुआ तपा गच्छका उपाश्रय है पर कई वर्षोंसे इसमें कोई यति नहीं रहता। कहनेका तात्पर्य्य यह है कि यहां इन सभी गच्छों का अच्छा प्रभाव रहा है फिर भी साहित्यिक दृष्टिसे यहांके यतियोंमें संख्या और विद्वतामें खरतर गच्छके यति ही विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके रचित साहित्य बहुत विशाल है क्योंकि उनका सारा जीवन धर्मप्रचार, परोपकार और साहित्य साधनामें ही व्यतीत होता था, उनके पाण्डित्य की धाक राजदरबारोंमें भी जमी हुई थी। उन्हीं यतियों और कुछ गोस्वामी आदि ब्राह्मण विद्वानोंके विद्याबल पर ही "आतमध्यानी आगरै, पण्डित बीकानेर" लोकोक्ति प्रसिद्ध हुई थी। यद्यपि यहांके जैन यतियोंने बहुत बड़ा साहित्य निर्माण किया है पर हम यहाँ केवल उन्हीं रच-नाओंकी सूची दे रहें हैं जिनका निर्माण उन रचनाओंमें बीकानेरमें होनेका निर्देश है या निश्चतरूपसे बीकानेरमें रचे जानेका अन्य प्रमाणोंसे सिद्ध है। यह सूची संवतानुक्रमसे दी जा रही है, जिससे शताब्दीवार उनकी साहित्य सेवाका आभास हो जायगा। यद्यपि बीकानेरमें रचे हुए ग्रंथ सं० १५७१ से पहलेके संवत् नामोल्लेखवाले नहीं मिलते तो भी यहां जैन साधुओंका आवागमन तो बीकानेर बसनेके साथ साथ हो गया था, निश्चित है। अनूप संस्कृत लायब्रेरीमें सप्तपदार्थी वस्तु प्रकाशिनी वृत्ति पत्र १७ की प्रति है जो कि बीकानेर बसनेके साथ साथ अर्थात् प्राथमिक दुर्ग निर्माणके भी दो वर्ष पूर्व लिखी गई थी, पुष्पिका लेख इस प्रकार है :—

इति श्री बृहद्गच्छ मण्डन पूज्य वा० श्री श्री विनयसुन्दर शिष्येन वा० मेघरत्नेन लेखि स्व पठनार्थं सप्तपदार्थी वृत्तिः॥ संवत् १५४३ वर्षे आश्विन बदि ११ दिने श्री विक्रमपुरवरे श्री विक्रमादित्य विजयराज्ये॥ ग्रंथाग्र सर्व संख्या १८४८ अक्षर ११।

बीकानेरमें लिखी हुई प्रतियोंकी संख्या प्रचुर है, वे हजारोंकी संख्यामें होनेके कारण उनकी सूची देना अशक्य है।

रचनाकाल	ग्रंथ नाम	रचयिता	
सं० १५७१	लघुजातक टीका	भक्तिलाभ (ख०)	
सं० १५७२	उत्तमकुमार चरित्र	चारुचन्द्र (ख०) स्वयं लिखित प्रति	
सं० १५८२	आचारांग दीपिका	जिनहंससूरि (ख०)	
सं० १५८३ मार्गशिर	आरामशोभा चौपाई	विनयसमुद्र उपकेश	ग०
सं० १६०२ बै० सु० ५ सोम	मृगावती चौपाई	विनयसमुद्र	,,
सं० १६०२ फाल्गुन	सीता चौपाई (पद्मचरित्र)	विनयसमुद्र	,,
सं० १६०२ लगभग	संग्रामसूरि चौपाई	विनयसमुद्र	,,
सं० १६०० लगभग	निश्चय व्यवहार स्तवन	पासचन्दसूरि नागपुरी तपा	
सं० १६०४	सुख-दुःख विपाक सन्धि	धर्ममेरु (ख०)	
सं० १६११ दीवाली	समवसरण बालावबोध	साधुकीर्ति[1] (ख०)	
सं० १६१८ माघ वदि ७	मुनिपति चौपाई	हीरकलश (ख०)	
सं० १६२२ चैत्र सुदि १५	ललितांग कथा	हर्षकवि[2] (ख०)	
सं० १६३६ का० सु० ५	अमरकुमार चौपाई	हेमरत्न[3] पूर्णिमागच्छ	
सं० १६४०	प्रश्नोत्तर शत्तक वृत्ति, आदि स्त०	पुण्यसागर	(ख०)
सं० १६४३ मार्गसिर	जीभदांत सम्वाद	हीरकलश	,,
,,	हीयाली	,,	,,
सं० १६४३ फा० व० ८	गजभंजन चौपाई	मुनिप्रभ	,,
सं० १६४३	वच्छराज देवराज चोपाई	कल्याणदेव	,,
सं० १६४४	नेमिदूत वृत्ति	गुणविनय	,,
सं० १६४६	रघुवंश वृत्ति	गुणविनय	,,
सं० १६४६	बारह भावना संधि	जयसोम	,,
सं० १६५१	आरामशोभा चौपाई	समयप्रमोद	,,
सं० १६५४	शब्दप्रभेद वृत्ति	ज्ञानविमल	,,
सं० १६५४	शीलोंच्छ नाम को० टीका	श्रीवल्लभ	,,
सं० १६५५	उपकेश शब्द व्युत्पत्ति	श्रीवल्लभ	,,
सं० १६६१ चैत्र	शुकराज चौपाई	सुमतिकल्लोल	,,
सं० १६६२ चैत्र सुदि १०	धर्ममंजरी चौपाई	समयराज	,,

१—बच्छावत मन्त्री संग्रामसिंहके आग्रहसे

२—हीरकलशके अनुरोधसे

३—मन्त्री कर्मचन्द्रके आग्रहसे

रचनाकाल	ग्रन्थ नाम	रचयिता	
सं० १६६६ माघ सुदि ४	साधुसमाचारी बालावबोध	धर्मकीर्त्ति	(ख०)
सं० १६७७ वैशाख सुदि ५	रामकृष्ण चौपाई	लावण्यकीर्त्ति[1]	,,
सं० १६७५	सागरसेठ चौपाई	सहजकीर्त्ति	,,
सं० १६७७ लगभग	चन्दनमलयागिरि चौपाई	भद्रसेन	,,
सं० १६८३ मार्गसिर	श्रावक कुलक	समयसुन्दर	,,
	अष्टकत्रय	समयसुन्दर	,,
	आदिनाथ स्तवन	,,	,,
सं० १६८६	पृथ्वीराजकृत कृष्णरुक्मिणीवेलि बालावबोध	जयकीर्त्ति	,,
सं० १६६२ माघ सुदि ५	नेमिनाथ रास	कनककीर्त्ति	,,
सं० १६६६ कार्तिक सुदि ११	रघुवंश टीका	सुमतिविजय	,,
	मेघदूत टीका	,,	,,
	पच्चक्खाण विचार गर्भित	क्षेम	,,
	पार्श्व स्तवन		,,
सं० १७०३ (७?) माघ सुदि१३ सोम	थावच्चासुकोशल चौपाई	राजहर्ष	,,
सं० १७०५	ऋषिमण्डल वृत्ति	हर्षनन्दन	,,
सं० १७०७	दशवैकालिक गीत	जयतसी	,,
सं० १७११	उत्तराध्ययन वृत्ति	हर्षनन्दन	,,
सं० १७२१	कयवन्ना चौपाई	जयतसी	,,
सं० १७२६ विजयदशमी	अजापुत्र चौपाई	भावप्रमोद	,,
सं० १७३६ आषाढ़ बदि ५	लीलावती चौपाई	लाभवर्द्धन[2]	,,
सं० १७३८ वै० सु० १०	रात्रिभोजन चौपाई	लक्ष्मीवल्लभ	,,
सं० १७३६ माघ सु० २	सुमति नागिला चौपाई	धर्ममन्दिर	,,
सं० १७४२	चित्रसंभूति सज्झाय	जीवराज	,,
सं० १७४८	सुबाहु चौढालिया	वच्छराज	(लों०)
	पाण्डित्य-दर्पण	उदयचन्द्र	(ख०)
सं० १७५३ आ० सु० १३	छप्पय बावनी	धर्मवर्द्धन	,,
	शीलरास	धर्मवर्द्धन	,,

१—भणशाली करमचंद आग्रहसे रचित

२—कोठारी जैतसीके आग्रहसे रचित

रचनाकाल	ग्रन्थका नाम	रचयिता	
सं० १७५६	आदिनाथ स्तवन	दयातिलक	(ख०)
सं० १७६३ पोष वदि १३	द्रव्यप्रकाश	देवचन्द्र	,,
सं० १७६५ चैत्र	बीकानेर गजल	उदयचन्द्र	,,
सं० १७८४ चौमास	सीता चौढालिया	दौलतकीर्ति	(तपा)
सं० १७८६ विजयदशमी	भर्तृहरि शतकत्रय हिन्दीपद्य	नयणसिंह[1]	(ख०)
सं० १८०८ फाल्गुण ११	चौवीसी	जिनकीर्तिसूरि	,,
सं० १८१४ भा० व० ३	चतुर्विंशति जिनपंचाशिका	रामविजय	,,
सं० १८१४ पो० सु० १०	चित्रसेनपद्मावती चौपाई	रामविजय	,,
सं० १८३४ भा० सु० ६	गौतम रास	रायचन्द्र	
	चेलना चौपाई	रायचन्द्र	
सं० १८४० सुदि १०	मौनएकादशी कथा	जीवराज	
सं० १८४३ कार्तिक सुदि १५	धन्ना चौपाई	गुणचन्द्र	
सं० १८४७	मौनएकादशी कथा	जीवराज	
सं० १८५०	१६ स्वप्न चौढालिया	गुणचन्द्र	
सं० १८५० आ० सु० ७	जीवविचार वृत्ति	क्षमाकल्याण	(ख०)
सं० १८५३ वै० व० १२	प्रश्नोत्तर सार्द्ध शतक	क्षमाकल्याण	,,
सं० १८६० फा० सु० ११	मेरुत्रयोदशी व्याख्यान	क्षमाकल्याण	,,
सं० १८६७	जिनपालित जिनरक्षित चौपाई	उदयरत्न	,,
सं० १८६९ विजयदशामी	श्रीपालचरित्र वृत्ति	क्षमाकल्याण	,,
	प्रतिक्रमण हेतवः	क्षमाकल्याण	,,
सं० १८७१ मा० शुदि १	सुपार्श्वप्रतिष्ठा स्त०	क्षमाकल्याण	,,
सं० १८७१ भा० वदि १३	नवपद पूजा	ज्ञानसार	,,
सं० १८७५ मार्गसिर सुदि १५	चौवीसी	ज्ञानसार	,,
सं० १८७८ कार्तिक शु० १	विरहमानवीसी	ज्ञानसार	,,
सं० १८८० आषाढ़ शु० १३	आध्यात्मगीता बालावबोध	ज्ञानसार	,,
सं० १८७६ फा० कृ० ६	मालापिंगल	ज्ञानसार	,,
सं० १८८१ मार्ग० कृ० १३	निहालबावनी	ज्ञानसार	,,
सं० १८८२ भा० वदि १	राम लक्ष्मण सीता चौ०	शिवलाल	(लौं०)
सं० १८६४ वै० व० १	षट्दर्शन समुच्चयबालावबोध	कस्तूरचंद्र	(ख०)

१—राजकुमार आनन्दसिंह के आग्रह से

रचनाकाल	ग्रन्थनाम	रचयिता
सं० १८९८ फा० शु० ७	मदनसेन चौपई	सांवतराम (लौं०)
सं० १९१३ आ० सुदि ५	पंचकल्याणक पूजा	बालचंद्र (ख०)
सं० १९३० आषाढ़ वदि ११	४५ आगम पूजा	रामलालजी "
सं० १९३० ज्येष्ठ सुदि १३	सिद्धाचल पूजा	सुमतिमंडन "
सं० १९३६	बारहव्रत पूजा	कपूरचंद "
सं० १९४० आ० सु० १२	अष्टप्रवचनमाता पूजा	सुमतिमंडण "
सं० १९४० आ० सु० १०	पांचज्ञान पूजा	" "
सं० १९४० मि० सु० ५	सहस्रकूट पूजा	" "
सं० १९४०	बीसस्थानक पूजा	आत्मारामजी (तपा)
सं० १९४०	आबू पूजा	सुमतिमंडण (ख०)
सं० १९४५ लिखित	विविध बोल संग्रह	बलदेव पाटणी दिगम्बर
सं० १९४७	चौवीस जिन पूजा	हर्षचंद्र (पायचंदगच्छीय)
सं० १९५३	चौदहराज लोकपूजा	सुमतिमंडन (ख०)
सं० १९५३ माघ सुदि १४	पंच परमेष्टि पूजा	" "
सं० १९५३ मिगसर सुदि २	दादाजी की पूजा	रामलालजी "
सं० १९५५	११ गणधर पूजा	सुमतिमंडन "
सं० १९५८ श्रावण वदि १०	जम्बूद्वीप पूजा	सुमतिमंडन "
सं० १९६१ माघ वदि ६	संघ पूजा	सुमतिमंडन "
सं० १९७८	ज्ञान दर्शन पूजा	विजयवल्लभसूरि (त०)

अब बीकानेर रियासत के भिन्न भिन्न स्थानों में जो साहित्य निर्माण हुआ है, उसकी सूची दी जा रही है :—

(१) रिणी

रचनाकाल	ग्रंथका नाम	रचयिता
सं० १६३६	मुनिमालिका	चारित्रसिंघ (ख०)
सं० १६८५	कल्पलता	समयसुन्दर "
सं० १६८१	यति आराधना	" "
सं० १७२३	उत्तराध्ययन दीपिका	चारित्रचंद्र "
सं० १७२५ का० ब० ६	धर्मबावनी	धर्मवर्द्धन "
सं० १७४६ माघ ब० १३	पंचकुमारकथा	लक्ष्मीवल्लभ "

(२) लूणकरणसर

रचनाकाल	ग्रंथका नाम	रचयिता	
सं० १६८५	विशेष संग्रह	समयसुंदर	(ख०)
सं० १६८४	संतोष छत्तीसी	,,	,,
सं० १६८४ श्रावण	दुरियर वृत्ति	,,	,,
सं० १६८४	कल्पलता प्रारंभ	,,	,,
सं० १६८५	विसंवाद शतक	,,	,,
सं० १७२२ मेरु तेरस	२८ लब्धिस्तवन	धर्मवर्द्धन	,,
सं० १७३२ मिगसर	३४ अतिसय स्तवन	जयवर्द्धन	,,
सं० १७४२	कुलध्वज चौपाई	विद्यविलास	,,
सं० १७५० मिगसर	रात्रिभोजन चौपाई	कमलहर्ष	,,
सं० १७८० आश्विन सुदि ३ रवि	मानतुंग मानवती रास	पुण्यविलास	,,
सं० १८४०	पार्श्वनाथ सलोका, पार्श्व स्तवन	दौलत	,,

(३) कालू

सं० १८१६ नेमिजन्म दिन	रत्नपाल चौपाई	रघुपति	,,

(४) घड़सीसर

सं० १६८२ भादवा सुदि ६	धर्मबुद्धि पापबुद्धि चौपई	चन्द्रकीर्त्ति	,,
सं० १८०६ प्र० भादवा सुदि १५	श्रीपाल चौपाई	रघुपत्ति	,,

(५) नोखा

सं० १७१०	धामन्नक चौपाई	ज्ञानहर्ष	,,
सं० १७१५	श्रावकाराधना	राजसोम	,,

(६) भटनेर

सं० १७५० अषाढ सुदि १५	वनराजर्षि चौपाई	कुशललाभ	,,
	मेघदूत वृत्ति	लक्ष्मीनिवास	,,

(७) नौहर

सं० १७११ कार्तिक	मूलदेव चापाई	रामचन्द्र	,,

(८) महाजन

सं० १७३७ फा० सु० १०	ऋषभदत्तरूपवती चौपाई	अभयकुशल	,,

(९) नापासर

सं० १७४० जे० सु० १३	धर्मसेन चौपाई	यशोलाभ	,,
सं० १७८७ द्वि० भा० ब० १	रात्रिभोजन चौपाई	अमरविजय	,,
सं० १७९८ भा० सु० ५	सुदर्शन चौपाई	अमरविजय	,,

रचनाकाल	ग्रंथका नाम	रचयिता	
सं० १८०३ माघ सुदि १५	जैनसार बावनी	रघुपत्ति	(ख०)
(१०) गारबदेसर			
सं० १८०६ विजयादशमी	केशी चौपाई	अमरविजय	„
(११) रायसर			
सं० १७७०	अरहन्ना सज्झाय	अमरविजय	„
सं० १७७५	मुंछ माखण कथा	”	„
सं० १८०३ धनतेरस	धर्मदत्त चौपाई	अमरविजय	„
(१२) केसरदेसर			
सं० १८०३ प्रथम दिवस	नन्दिषेण चौपाई	रघुपत्ति	„
(१३) तोलियासर			
सं० १८२५ फाल्गुन	सुभद्रा चौपाई	रघुपत्ति[1]	„
सं० १८२५ ऋषि पंचमी	प्रस्ताविक छप्पय बावनी	रघुपत्ति	„
(१४) देशनोक			
सं० १८६१ माघ सुदि ५	सुविधि प्रतिष्ठा स्तवन	क्षमाकल्याण	„
सं० १८८३	खंदक चौढालिया	उदयरत्न	„
(१५) देसलसर			
सं० १८०८ लगभग	४२ दोषगर्भित स्तवन	रघुपत्ति	„
(१६) बिगयपुर (बिगा)			
सं० १६७६ प्र० आश्विन सुदि १३	गुणावली चौपाई	ज्ञानमेरु	„
(१७) बापड़ाऊ (बापेऊ)			
सं० १६५० लगभग	विजयतिलककृत आदि स्त०बालावबोध	गुणविनय[2]	„
(१८) रतनगढ़			
सं० १६६५	तेरापन्थी नाटक	यति प्रेमचन्द	„
(१९) राजलदेसर			
सं० १६-२ भादव सुदि ५	सोलहस्वप्न सज्झाय गा०२०हर्षप्रभ	शि०हीरकलश[3]	„
(२०) सेरूणा			
सं० १६४७	वैराग्यशतक वृत्ति[4] पत्र २२	गुणविनय	„
सं० १६५७	विचार रत्न संग्रह हुंडिका	गुणविनय	„
(२१) पूगल			
सं० १७०७	दुर्जन दमन चौपाई	ज्ञानहर्ष	„

१—प्रोहितोंके राज्यमें दीपचन्दके आग्रह से २—ज्ञाननन्दनके आग्रह से ३ संघके आग्रह से
४—कविके स्वयं लिखित बीकानेर ज्ञानभण्डारकी प्रतिमें :—"सेरूनक नाम्निवर नगरे"

बीकानेर के जैन मन्दिरों का इतिहास

बीकानेर के बसने में जैन श्रावकों का बहुत बड़ा हाथ रहा है। वीरवर बीकाजी के साथ में आए हुए प्रतिष्ठित व्यक्तियों में बोहित्थरा वत्सराज आदि के नाम उल्लेखनीय है, यह बात हम पूर्व लिख चुके हैं। वह समय धार्मिक श्रद्धाका युग था अतः बीकानेर बसने के साथ साथ जैन श्रावकोंका अपने उपास्य[1] जैन तीर्थङ्करोंके मन्दिर निर्माण कराना स्वाभाविक ही है—कहा जाता है कि बीकानेर के पुराने किलेकी नींव जिस शुभ मुहूर्त में डाली गई उसी मुहूर्त में श्री आदिनाथ मुख्य चतुर्विंशति जिनालय (चउवीसटा) का शिलान्यास किया गया था। इस मन्दिर के लिए मूलनायक प्रतिमा मण्डोवर से सं० १३८० में श्री जिनकुशलसूरिजी प्रतिष्ठित लायी गई थी। सं० १५६१ में मन्दिर बन कर तैयार हो गया, यह बीकानेर का सब से पहला जैन मन्दिर है और बीकाजी के राज्यकाल में ही बन चुका था। लोकप्रवाद के अनुसार श्री भाण्डासर (सुमतिनाथजी) का मन्दिर पहले बनना प्रारंभ हुआ था पर यह तो स्पष्ट है कि उपर्युक्त मन्दिर श्री चिन्तामणिजी के पीछे प्रसिद्धि में आया है। शिलालेख के अनुसार भांडासाह कारित सुमतिनाथ जी का मन्दिर सं० १५७१ में बन कर तैयार हुआ था यह संभव है कि इतने बड़े विशाल मन्दिर के निर्माण में काफी वर्ष लगे हों पर इसकी पूर्णाहुति तो श्री चिन्तामणि—चौवीसटाजी के पीछे ही हुई है। इसी समय के बीच बीकानेर से शत्रुंजय के लिये एक संघ निकला था जिसमें देवराज—वच्छराज प्रधान थे। उसका वर्णन साधुचंद्र कृत तीर्थराज चैत्य परिपाटी में आता है। उसमें बीकानेर के ऋषभदेव (चौवीसटाजी) मन्दिर के बाद दूसरा मन्दिर वीर भगवान का लिखा है अतः सुमतिनाथ (भांडासर) मन्दिर की प्रतिष्ठा महावीर जी के मन्दिर के बाद होनी चाहिये। मं० वत्सराज के पुत्र कर्मसिंहने नमिनाथ चैत्य बनवाया जिसकी संस्थापना सं० १५५६ में और पूर्णाहुति सं० १५७० में हुई। लौंकागच्छ पट्टावली के अनुसार श्री महावीरजी (वैदों का) के मन्दिर की नींव सं० १५७८ के विजयादशमीको डाली गई थी पर यह संवत् विचारणीय है। श्री नमिनाथ जिनालय के मूलनायक सं० १५६३ में प्रतिष्ठित हैं। सोलहवीं शती में ये चार मन्दिर ही बन पाए थे। सं० १६१६ में बीकानेर से निकले हुए शत्रुंजय यात्रीसंघ की चैत्यपरिपाटी में गुणरंग गणिने बीकानेर के इन चारों मन्दिरों का ही वर्णन किया है —

"बीकनयरह तणइ संघि उच्छव रली, यात्रा सेत्रुंजगिरि पंथ कीधी वली।
ऋषभ जिण सुमति जिण नमवि नमि सुहकरो, वीर सिद्धत्थ वर राय कुल सुन्दरो।"

अतः संवत् १६१६ तक ये चार मन्दिर ही थे यह निश्चित है। इसके पश्चात् सं० १६३३ में तुरसमखानने सीरोही लूटी और लूटमें प्राप्त १०५० धातु-मूर्त्तिएं फतैपुर सीकरी में सम्राट् अकबरको भेंट की। ५-६ वर्ष तक वे प्रतिमाएं शाही खजाने में रखी रही व अंत में बीकानेर नरेश रायसिंहजी के साहाय्यसे मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रजी सम्राटसे प्राप्त कर उन्हें बीकानेर

१—बीकानेरके मन्दिरोंके बननेके पूर्व बोहिथरा देवराजने श्रीशीतलनाथ चतुर्विंशति पट्ट बनवा कर सं० १५३४

लाये उनमेंसे वासुपूज्य मुख्य चतुर्विंशति प्रतिमाको मूलनायक रूपसे अलग मन्दिरमें स्थापितकी। इस प्रकार पांचवां मन्दिर श्री वासुपूज्य स्वामीका प्रसिद्ध हुआ। सं० १६४४ में बीकानेर से निकले हुए यात्री संघकी गुणविनयजी कृत चैत्य परिपाटी में इन पांचों मन्दिरोंका उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है :—

"पढम जिण वंदि बहु भाव पूरिय मणं, सुमति जिण नमवि नमि वासुपूज्यं जिनं।
वीर जिण धीर गंभीर गुण सुन्दरं, कुसलकर कुसलगुरु भेटि महिमाधरं ॥२॥"

इससे निश्चित होता है कि सं० १६४४ तक बीकानेर में ये ५ चैत्य थे। इनके बाद सं० १६६२ मिती चैत्र वदि ७ के दिन नाहटों की गवाड़ स्थित विशाल एवं भव्य शत्रुञ्जयावतार ऋषभदेव भगवान्के मन्दिर की प्रतिष्ठा युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजीके कर कमलोंसे हुई। यद्यपि डागोंकी गवाड़के श्री महावीर जिनालयकी प्रतिष्ठा कब हुई इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता फिर भी युगप्रधान जिनचन्द्रसूरिजीके विहारपत्रमें सं० १६६३ में भी बीकानेर में सूरिजीके द्वारा प्रतिष्ठा होनेका उल्लेख होनेसे इस मन्दिरका प्रतिष्ठा संवत् यही प्रतीत होता है। कविवर समयसुन्दरजी विरचित विक्रमपुर चैत्य परिपाटीमें इन सात मन्दिरोंका ही उल्लेख है। हमारे ख्यालसे यह स्तवन सं० १६६४-७० के मध्य का होगा। इसी समयके लगभग श्री अजितनाथ जिनालयका निर्माण होना संभव है। नागपुरीतपागच्छके कवि विमलचारित्र, कनककीर्ति, धर्मसिंह और लालखुशाला इन चारों के चैत्य-परिपाटी स्तवनोंमें श्री अजितनाथजीके मन्दिरको अन्तिम मन्दिर के रूपमें निर्देश किया है। समयसुन्दरजी अपने तीर्थमाला स्तवनमें इन आठ चैत्योंका ही निर्देश करते हैं—"बीकानेर ज वंदियै चिरनंदियैरे अरिहंत देहरा आठ" इस तीर्थमालाका सर्वत्र अधिकाधिक प्रचार होनेके कारण बीकानेरकी इन आठ मन्दिरोंवाले तीर्थके रूपमें बहुत प्रसिद्धि हुई। इसी समय दो गुरु मन्दिरोंका भी निर्माण हुआ जिनमेंसे पार्श्वचंद्रसूरि स्तूप सं० १६६० और यु० जिनचन्द्रसूरि पादुका—स्तूप सं० १६७३ में प्रतिष्ठित हुए। उपलब्ध चैत्य परिपाटियोंमें से धर्मसिंह और लालखुशालकी कृतिएं सं० १७५६ के लगभगकी हैं एवं सं० १७६५ की बनी हुई बीकानेर गजलमें भी इन आठ मन्दिरोंका ही उल्लेख है। सं० १८०१ में राजनगरमें रचित जयसागर कृत तीर्थमाला स्तवन में "आठ चैत्ये बीकानेरे" उल्लेख है। अतः सं० १८०१ तक ये आठ मन्दिर ही थे इसके अनन्तर कविवर रघुपति रचित श्री शान्तिनाथ स्तवन में ६ वें मन्दिर शान्तिनाथजीका (जो चिन्तामणिजीके गढ में हैं) सं० १८१७ मार्गशीष कृष्णा ५ के दिन पारख अगरूप के द्वारा बनवाकर प्रतिष्ठित होनेका उल्लेख है। अर्थात् लगभग १५० वर्ष तक बीकानेरमें उपर्युक्त ८ चैत्य ही रहे। इसके बाद १६ वीं शतीमें बहुत से मन्दिरोंका निर्माण एवं श्री अजितनाथजी (सं० १८५५) और गौड़ी पार्श्वनाथजी (सं० १८८६) के मन्दिरका जीर्णोद्धार हुआ।

में श्री जिनभद्रसूरि पट्टधर श्रीजिनचन्द्रसूरिसे प्रतिष्ठा करवाई संभवतः यह प्रतिमा वे बीकानेरमें आते समय साथ लाए और दर्शन पूजन करते थे। श्री महावीरजी (बैदों) के मन्दिरमें एक धातु प्रतिमा सं० १५५५ में विक्रमपुरमें देवगुप्तसूरि प्रतिष्ठित विद्यमान है। बीकानेरमें हुई प्रतिष्ठाओंमें यह उल्लेख सर्व प्रथम है।

शिलालेखोंके अनुसार नाहटोंकी गुवाड़ में श्री आदिनाथजीके मन्दिरके अन्तर्गत श्री पार्श्वनाथजी सं० १८२६, नाहटोंकी गुवाड़में श्रीसुपार्श्वनाथजीका मन्दिर सं० १८७१, नाहटोंकी बगीचीमें पार्श्वनाथजीकी गुफा सं० १८७२ से पूर्व, कोचरोंकी गुवाड़में पार्श्वनाथजी सं० १८८१, श्री सीमंधर स्वामी (भांडासरजीके गढमें) सं० १८८७, गौड़ी पार्श्वनाथजीके अन्तर्गत सम्मेतशिखर मन्दिर सं० १८८६ बेगानियोंकी गुवाड़के श्री चंद्रप्रभुजीका सं० १८६३, कोचरोंकी गुवाड़के श्री आदिनाथजी सं० १८६३, नाहटोंकी गुवाड़के श्री शान्तिनाथजी सं० १८६७ में प्रतिष्ठित हुए। अन्य मन्दिर भी जिनका निर्माणकाल शिलालेखादि प्रमाणोंके अभावमें अनिश्चित है, इसी शताब्दीमें बने हैं। २० वीं शताब्दीमें भी यह क्रम जारी रहा और सं० १६०५ में बैदोंके महावीरजीमें संखेश्वर पार्श्वनाथजीकी देहरी और इसी संवत्में इसके पासकी देहरीमें पंचकल्याणक, सिद्धचक्र व गिरनारजीके पट्टादि प्रतिष्ठा, सं १६२३ में गौड़ी पार्श्वनाथजीके अन्तर्गत आदिनाथजी, सं० १६२४ में सेटूजी कारित श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ मन्दिर, सं० १६३१ में रांगड़ीके चौकमें श्री कुंथुनाथजीका मन्दिर, सं० १६६४ में श्री विमलनाथजीका मन्दिर (कोचरोंमें) प्रतिष्ठित हुआ। सं० १६६३ में दूगड़ोंकी बगीचीका गुरु मन्दिर, सं० १६६७ महो० रामलालजीका गुरुमन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। सं० १६८७ में रेलदादाजीका जीर्णोद्धार हुआ। उपाश्रयादिके अन्य कई मन्दिर भी इसी शताब्दीमें प्रतिष्ठित हुए हैं पर उनके शिलालेखादि न मिलनेसे निश्चित समय नहीं कहा जा सकता। सं० २००१ वै० सुदी ६ को कोचरोंकी बगीचीमें पार्श्वजिनालय और गुरुमन्दिरकी प्रतिष्ठा हुई है। बोरोंकी सेरीमें भी श्री महावीर स्वामी एक नया मन्दिर निर्माण हुआ जिसकी प्रतिष्ठा सं० २००२ मार्गशीर्ष कृष्णा १० को हुई।

अब उपर्युक्त मन्दिरोंका पृथक्-पृथक रूपसे संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है—

श्री चिन्तामणिजीका मन्दिर

यह मन्दिर बाजारके मध्यमें कन्दोइयोंके दुकानोंके पास है। जैसा कि पूर्व कहा जा चुका है, बीकानेर दुर्गके साथ-साथ इसका शिलान्यास होकर सं० १५६१ के आषाढ़ शुक्ला ६ रविवार को पूर्ण हुआ। शिलालेखसे विदित होता है कि इसे श्री संघने राव श्रीबीकाजीके राज्यमें बनवाया था। मूलनायक श्री आदिनाथ मुख्य चतुर्विंशति प्रतिमा सं० १३८० में श्री जिनकुशलसूरि प्रतिष्ठित और नवलखा गोत्रीय सा० नेमिचंद्र कारित, जो कि पहले मंडोवरमें मूलनायक रूपमें थी, यहाँ प्रतिष्ठितकी गई। चतुर्विंशति प्रतिमा होनेके कारण इस मन्दिरका नाम "चौवीसटाजी" प्रसिद्ध हुआ। सतरहवीं शतीमें इसका नाम श्रीसार एवं एक अन्य कविने "चउवीसटा चिन्तामणि" लिखा है। १८ वीं शताब्दीके चैत्य परिपाटी स्तवनोंमें "चउवीसटाजी" लिखा है किन्तु अब वह नाम विस्मृत होकर श्री चिन्तामणिजीके नामसे ही इस मन्दिरकी प्रसिद्धि है, जब कि "चिन्तामणि" विशेषण साधारणतया श्री पार्श्वनाथ भगवानके सम्बोधनमें ही प्रयुक्त होता है।

सं० १५९१ में राव जयतसीके समयमें हुमायुंके भाई, कामरां (जो लाहौरका शासक था) ने भटनेर पर अधिकार कर बीकानेर पर प्रबल आक्रमण किया। उसने गढ़ पर अधिकार कर लिया[१]। उस समय उसके सैन्यने इस मन्दिरके मूलनायक चतुर्विंशति पट्ट के परिकरको भग्न कर डाला, जिसका उद्धार बोहित्थरा गोत्रीय मंत्रीश्वर वच्छराज (जिनके वंशज वच्छावत कहलाए) के पुत्र मंत्री वरसिंह-पुत्र मं० मेघा-पुत्र मं० वयरसिंह और मं० पद्मसिंहने किया। शिलालेखमें उल्लेख है कि महं० वच्छावतोंने इस मन्दिरका परघा बनवाया। मूलनायकजीके परिकरके लेखानुसार संवत् १५९२ में श्री जिनमाणिक्यसूरिजीने पुनः प्रतिष्ठा की। इसके पश्चात सं० १५९३, १५९५ और १६०६ में श्री जिनमाणिक्यसूरिजीने कई प्रतिमाओं एवं चतुर्विंशति जिन मातृकापट्टकी प्रतिष्ठा की।

इस मन्दिरमें दो भूमिगृह हैं जिनमेंसे एकमें सं० १६३९ में मंत्रीश्वर कर्मचन्दके लायी हुई १०५० धातु प्रतिमाएँ रखी गई। सम्भवतः इन प्रतिमाओंकी संख्या अधिक होनेके कारण प्रतिदिन पूजा करनेकी व्यवस्थामें असुविधा देखकर इन्हें भण्डारस्थ कर दी होंगी। इन प्रतिमाओंके यहाँ आनेका ऐतिहासिक वर्णन उ० समयराज और कनकसोम विरचित स्तवनोंमें पाया जाता है, जिसका संक्षिप्त सार यह है :—

सं० १६३३ में तुरसमखानने सिरोही की लूटमें इन १०५० प्रतिमाओंको प्राप्तकर फतहपुर सीक्रीमें सम्राट अकबरको समर्पण की। वह इन प्रतिमाओंको गालकर उनमेंसे स्वर्णका अंश निकालनेके लिए लाया था। पर अकबरने इन्हें गलानेका निषेधकर आदेश दिया जहाँ तक मेरी दूसरी आज्ञा न हो, इन्हें अच्छी तरह रखा जाय। श्रावकलोगोंको बड़ी उत्कंठा थी कि किसी तरह इन्हें प्राप्तकी जाय पर ५-६ वर्ष बीत गये, कोई सम्राटके पास प्रतिमाओंके लानेका साहस न कर सका अन्तमें बीकानेर नरेश महाराजा रायसिंहको मंत्रीश्वर कर्मचन्द्रने इन प्रतिमाओंको जिस किसी प्रकारसे प्राप्त करनेके लिये निवेदन किया। राजा रायसिंहजी बहुत-सी भेंट लेकर अकबरके पास गये और उसे प्रसन्नकर प्रतिमायें प्राप्त कर लाए। सं० १६३९ आषाढ़सुदि ११ बृहस्पतिवारके दिन महाराजा, १०५० प्रतिमाओंको अपने डेरेपर लाये, और आते समय उन्हें अपने साथ बीकानेर लाए। जब वे प्रतिमायें बीकानेर आई तो मंत्रीश्वर कर्मचन्दने संघके साथ सामने जाकर बड़े समारोहके साथ प्रवेशोत्सव किया और उनमेंसे श्री वासुपूज्य चतुर्विंशति पट्टको अपने देहरासरमें मूलनायक रूपमें स्थापित किया।

ये प्रतिमायें आज भी उसी गर्भगृहमें सुरक्षित है और खास-खास प्रसंगोंमें बाहर निकाल कर अष्टान्हिका महोत्सव, शान्ति-स्नात्रादिके साथ पूजनकर शुभ मुहूर्तमें वापिस विराजमान कर दी जाती हैं। गत वर्षोंमें सं० १९८७ में जैनाचार्य श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजीके बीकानेर

१ सं० १५९१ के मिगसर वदि ४ को रात्रिके समय राव जयतसीने अपने चुने हुये १०९ वीर राजपूत सरदारों और भारी सेनाके साथ मुगलोंकी सेना पर आक्रमण किया इससे वे लोग लाहौरकी ओर भाग छूटे और गढ पर राव जैतसी का पुनः अधिकार हो गया।

चातुर्मासमें का० सु० ३ को बाहर निकाली गई थी और मिती मिगसर बदि ४ को वापिस विराजमान की गई उसके पश्चात् सं० १९९५ में श्री हरिसागरसूरिजी के पधारने पर भादवा वदि १ को निकाली जाकर सुदि १० को रखी और सं० २००० में श्री मणिसागरसूरिजी के शुभागमनमें उपधान तप के उपलक्ष्य में बाहर निकाली गई थी। हमने इन प्रतिमाओं के लेख सं० १९९५ में लिए थे पर उनमें से आधे लेखों की नकल खोजाने से पुनः सं० २००० में समस्त लेखोंकी नकल की। मान्यता है कि इन प्रतिमाओं को निकालने से अनावृष्टि महामारी आदि उपद्रव शान्त हो जाते हैं। अभी इन प्रतिमाओं की संख्या ११०१ है। जिसमें जिसमें २ पाषाण की १ स्फटिक की और शेष धातु-निर्मित हैं।

दूसरे भूमिगृह में पाषाण की खंडित प्रतिमायें और चरणपादुकायें रखी हुई हैं जिन के लेख भी इस ग्रन्थ में प्रकाशित किये गये हैं।

सं० १६८३ में समयसुन्दरजी ने चौवीसटा स्तवन में इस मन्दिर की खास-खास प्रतिमाओं के वर्णन में चतुर्विंशति जिन मातृपट्ट, श्री जिनदत्तसूरि और श्री जिनकुशलसूरि मूर्ति का उल्लेख किया है। सहजकीर्ति ने भी पहले मंडप में वाम पार्श्व में मातृ पट्ट एवं जिनदत्तसूरि और जिनकुशलसूरि मूर्तियोंका उल्लेख किया है। कनककीर्ति ने पाषाण, पीतल और स्फटिक की प्रतिमायें मरुदेवी माता, जिनदत्तसूरि और जिनकुशलसूरि मूर्ति का उल्लेख किया है। सं० १७५५ में श्री लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय ने सं० ३५ औ स० ३६ की प्राचीनतम मूर्तियाँ, शत्रुंजय, गिरनार, समेतशिखर, विहरमान, सिद्धचक्र व समवसरण का पट्ट; कटकड़े में शांतिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर और विमलनाथजी के बिम्ब, प्रवेश करते दाहिनी ओर गौड़ी पार्श्व (सप्त-धातु-मय), संभवनाथजी की श्वेत मूर्ति आदि बांई ओर, दोनों तरफ भरत, बाहुबली की काउसग्ग मुद्रा मूर्ति, सप्त धातुमय सत्तरिसय यंत्र, २४ जिन मातृ पट्ट, स्फटिक पाषाण व धातु प्रतिमायें एवं दोनों दादा गुरुदेवों की मूर्तिओं का उल्लेख किया है।

इस मन्दिर के दाहिनी ओर कई देहरियाँ हैं जिनमें श्री जिनहर्षसूरिजी के चरण, श्री जिनदत्तसूरि मूर्ति, मातृपट्ट, नेमिनाथजी की बरात का पट्ट, १४ राजलोक के पट्ट, सप्तफणा पार्श्वनाथजी आदि की मूर्तियाँ है। एक परिकरपर सं० ११७६ मि० ब० ६ को अजयपुर में महावीर प्रतिमा को राण समुदाय के द्वारा बनवाने का उल्लेख है। एक देहरी की पाषाणपट्टिका पर सं० १६२४ आषाढ सुदि १० बृहस्पतिवार को लक्ष्मीप्रधानजी के उपदेश से बीकानेर संघ के द्वारा बनवाने का उल्लेख है। मन्दिर के बाँयी ओर श्री शांतिनाथजी का मन्दिर है जिसका परिचय इस प्रकार है :—

श्री शांतिनाथजी का मन्दिर

बीकानेर के मन्दिरों में यह ९ वाँ मन्दिर हैं। इससे पहिले यहाँ आठ मन्दिर ही थे, यह हम आगे लिख चुके हैं। पाठक श्री रघुपत्तिजी के बनाये हुये स्तवन से ज्ञात होता है कि इसे पारख

जगरूप के वंश में मुहकम, सुरूप, अभयराज और राजरूप ने बनवा कर सं० १८१७ के मिती मिगसर बदि ५ गुरुवार के दिन प्रतिष्ठा करवाई थी किन्तु इस समय श्री पार्श्वनाथ भगवान को बड़ी धातुमय प्रतिमा विराजमान है जो सं० १५४६ जेष्ठ बदि १ गुरुवार ने दिन श्री जिनसमुद्र सूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है, न मालुम कब और क्यों यह परिवर्त्तन किया गया ? इस मन्दिर में पाषाण की मूर्तियाँ बहुत सी हैं पर उनके प्रायः सभी लेख पची में दबे हुए हैं।

भांडाशाह कारित सुमतिनाथ मंदिर-भांडासर

यह मन्दिर (भांडासरजी का मन्दिर) सुप्रसिद्ध राजमान्य श्री लक्ष्मीनारायण मन्दिर के पासमें है। वह मन्दिर ऊँचे स्थान पर तीन मंजिला बना हुआ होनेके कारण २०-२५ मीलकी दूरीसे दृश्यमान इसका शिखर भांडासाह की अमरकर्त्ति का परिचय दे रहा है। यह मन्दिर बहुत ही विशाल, भव्य, मनोहर और कलापूर्ण है। मन्दिर में प्रवेश करते ही भक्तिभाव का संचार हो जाता है और भमती के विभिन्न सुन्दर शिल्पको देखकर भांडासाह का कला-प्रेम और विशाल हृदय का सहज परिचय मिलता है। तीसरे मंजिल पर चढ़ने पर सारा बीकानेर नगर और आस-पासके गांवोंका सुरम्य अवलोकन हो जाता है। इस मन्दिर के मूलनायक श्री सुमतिनाथ भगवान होने पर भी इसके निर्माता भांडासाह के नामसे इस की प्रसिद्धि भांडासरजी के मन्दिर रूपमें है। शिलालेखसे ज्ञात होता है कि सं० १५७१ के आश्विन शुक्ला २ को राजाधिराज श्री लूणकरणजी के राज्यकाल में श्रेष्ठी भांडासाह ने इस "त्रैलोक्य-दीपक" नामक प्रासाद को बनवाया और सूत्रधार गोदाने निर्माण किया।

संखवाल गोत्रके इतिहास में इन भांडासाह को संखवाल गोत्रीय सा० माना के पुत्र लिखा है। साहमाना के ४ पुत्र थे—१ सांडा, २ भांडा, ३ तोड़ा, ४ चौंडा। जब ये छोटे थे तो इनके संम्बधियोंने श्री कीर्त्तिरत्नसूरिजी को इन्हें दीक्षित करने की प्रार्थना की, तब उन्होंने फरमाया — ये भाई लाखों रुपये जिनेश्वर के मन्दिर निर्माणादि शुभ कार्योंमें व्यय कर शासनकी बड़ी प्रभावना करेंगे! वास्तव में हुआ भी वैसा ही, साहसांडा ने सत्तूकार (दानशाला) खोला, भांडाने बीकानेर में यह अनुपम मन्दिर बनवाया, तोड़ेने संघ निकाला और चौंड़ाने भी दानशाला खोली। साहभांडा के पुत्र पासवीर पुत्र वीरम, धनराज और धर्मसी थे। वीरम के पुत्र श्रीपाल पुत्र श्रीमलने जोधपुर में मन्दिर बनवाया। अब इस मन्दिर के विषय में जो प्रवाद सुनने में आये है वे लिखते हैं।

साहभांडा घीका व्यापार करते थे। चित्रावेलि या रसकुंपिका मिल जानेसे ये अपार धनराशिके स्वामी हुए। उनका इस मन्दिर को सात मंजिला और बावन जिनालय बनवाने का विचार था पर इसी बीच आपका देहावसान हो जानेसे साहसांडा या इनके पुत्रादि ने पूर्ण कराया। इनके धर्म-प्रेमके सम्बन्ध में कहा जाता है कि जब मन्दिर की नींव डाली गई तब एक दिन घी में मक्खीके पड़ जानेसे भांडासाह ने उसे निकाल कर अंगुली के लगे हुए घी को जूती पर

रगड़ दिया यह देखकर कारीगरों ने सोचा जो इतनेसे घीके लिए विचार करता है, वह क्या मन्दिर बनवायेगा परीक्षार्थ कारीगरों ने सेठजी को कहा—इस मन्दिर के निरुपद्रव और सुदृढ़ होनेके लिए इसकी नींवमें घी, खोपरे डालना आवश्यक है। भांडासाह ने तत्काल सैकड़ों मन घी मंगवा कर नींवमें डालना प्रारंभ किया। कारीगरों ने विस्मित होकर घीको नींवमें डलवाना बंदकर दिया और कहा कि क्षमा कीजिये, हम तो परीक्षा ही लेना चाहते थे कि जो अंगुली के लगे घी को जूतीके रगड़ देते हैं वे मन्दिर कैसे बनवायेंगे? भांडासाह ने कहा—हम लोग व्यर्थकी थोड़ी चीज भी न गंवाकर शुभ कार्यमें अपनी विपुल अस्थिर संपत्ति को लगाने में नहीं हिचकते। और घीको यत्र-तत्र पोंछने, गिराने से जीव विराधना की सम्भावना रहती है अब तो यह घी जिस नींवमें डालने के निमित्त आया है उसीमें डाला जायगा। ऐसा कह कर सारा घी नींवमें उंडेल दिया गया। इससे आपकी गहरी मनस्विताका परिचय मिलता है। कहा जाता है कि इस मन्दिरको बनवाने के लिए जल "नाल" गाँवसे और पत्थर जेसलमेर से मंगवाते थे। अतएव इस मन्दिर के निर्माण में लाखों रूपये व्यय हुए थे, इसमें कोई शक नहीं। कई वर्ष पूर्व बीकानेर के संघने जीर्णोद्धार, व रंग व सुनहरे वेल पत्तियोंका काम कराके इसकी शोभामें अभिवृद्धि की है।

राजसमुद्रजीकृत स्तवन में इसे त्रिभूमिया और गुणरंग एवं लालचंद ने स्तवन में चौभूमिया और चौमुखी के रूपमें उल्लेख किया है।

श्री सीमन्धर स्वामीका मन्दिर

यह मन्दिर भांडासरजी के अहाते में सं० १८८७ में बना था। यहाँ मिती अषाढ़ शुक्ला १० को २५ जिन बिंबोंकी प्रतिष्ठा श्री जिनहर्षसूरिजी द्वारा होनेका उल्लेख उदयरत्न कृत स्तवन में पाया जाता है। शिलालेख में इस मन्दिर का निर्माण उ० क्षमाकल्याणजी गणिके शि० धर्मानंदजी के उपदेश से होनेका उल्लेख है। इस मन्दिर की एक देहरी में क्षमाकल्याणोपाध्यायजी की मूर्त्ति व आलोंमें कई साध्वियों की चरणपादुकाएँ हैं।

श्री नमिनाथजी का मन्दिर

श्री भांडासरजी के मन्दिर के पीछे श्री लक्ष्मीनारायण पार्कमें यह मन्दिर अवस्थित है। मंत्रीश्वर वत्सराज के पुत्र मं० कर्मसिंह ने यह मन्दिर सं० १५७० में बनवाया। मूलनायकजी की प्रतिष्ठा सं० १५६३ माघ वदि १ गुरुवार को श्री जिनमाणिक्यसूरिजी ने की, अन्य प्रतिमाओं के लेख पबांमें दबे हुए हैं। यह मन्दिर भो विशाल, सुन्दर और कला-पूर्ण है। इस मन्दिर में जलका कुण्ड बंगाल आसाम के संघके द्रव्य सहाय्यसे चोरड़िया सीपानी चुन्नीलाल ने सं० १९२५ में बनवाया। इस मन्दिर के अधिष्ठायक भोमियाजी बड़े चमत्कारी हैं और प्रति बुधवार को बहुत से लोग दर्शन करने आते हैं। कहा जाता है कि ये भोमियाजी मन्दिर निर्माता मंत्री कर्मसिंहजी स्वयं हैं।

श्री महावीर स्वामीका मन्दिर (बैदोंका चौक)

यह मन्दिर बैदों और अचारजोंके चौकके बीचमें है। इसके निर्माणके सम्बन्धमें नागौरी लुंकागच्छकी पट्टावलीमें इस प्रकार उल्लेख पाया जाता है : -

"सं० १५४५ राव बीकैजी बीकानेर बसायौ तठा पछे सं० १५६६ माघ सुदि ५ रयणुजी बीकानेर आया रावश्री बीकाजी राज्ये घरांरी जमीन लीवी। पछै बीकानेरमें रयणुजी आधो च्यार राख्यो। हिवे सं० १५६२ श्री चउवीसटैजी रो मंदिर वच्छावता तथा सर्व पंचां करायौ"'। पछै काती सुदि १५री पूजा करता रयणुजी कह्यौ आज पूजा पहला म्हे करसां तद वच्छावत कह्यौ साहजी म्हांरो करायौ मंदिर छै म्हांरी मंडोवर सुं लायोड़ी प्रतिमा छै सो आजरी बड़ी पूजा म्हे करसां. काले थे करजो! इणतरै मांहोमांह बोलाचाली हुई। तद वच्छावतां कह्यौ साहजी इतरो जोर तो नवो देहरो करायनै करो तद रयणुजी देहरैसुं निकलनै घरेआया मनमें घणा उदास हुयनै विचार्यौ नवो देहरो करायां बिना मूंछ रहै नहीं। द्रव्य तो लगावनरी म्हांरै गिनती छै नहीं पिण उणां रे मेंतफो (?) राखणो नहीं इसो मनमें विचार करने चौइसटैजी जावणो छोड़दियो पछै घणा ही विख्टाला फिर्या पिण रयणुजी गया नहीं तठा पछै रयणुजी नै कमादेनी प्रति मात काल (!)' प्राप्त हुआ। तद वले नागोर भाई सांडेजी सोहिलजी बुलाय लीना तठा पछे एक दिवस भायां आगै वच्छावतां सुं बोलाचाली वार्त्ता कही तद भायां' र बेटा कह्यौ आपरी मर्जी हुवे जितरा दाम खरचो पिण नवोदेहरो करावो इण तरै भांयां, बेटां सलाह करीनै रयणुजी नागोरमें रहे छै इणतरै रहतां रावश्री लूणकरणजी रा परवाणा रयणुजीनै आया तिवारै रयणुजी भांडैजी कमैजी नै कबीला समेत लारै लाया नगैजीने पिण सागे लाया रूपचंदजीने कबीले बिना सागै लाया रावश्री लूणकरणजी सुं मिलया रु० ५००) नजरकर्या श्री दरबारसं बड़ी दिलासा दीवी और कह्यौ थे बड़ा साहूकार छौ सु थे तथा थांरा टाबरांनै म्हारै शहरमें वसावौ विणज व्यापार करौ थांरै अरज हुवै तो किया करौ थांरो मुलायजो रहसी इणभांत श्रीदरबार दिलासा देयनै दुसालो दियो पछै घरे आया। इण तरै रहतां आषाढ चौमासो आयो तद रूपचंदजो भोगीभंवर कमोजीनुंभाई पौसाक करनें देहरै जावणनै तैयारी हुवा तद रयणुजी कह्यौ आपारै वच्छावतांसुं मांहोमांहे बोलाचाली हुई सु देहरो नवो करायनै बीकानेरमें देहरै चालसां। इसो रयणुजी कह्यां थकां रूपचंदजी कमोजी बोल्यां कियोड़ी पौसाक तो उतारां नहीं इण ही पौसाक श्री दरबार चालौ देहरैरी जमी लेवां। तिवारै सिरपेच १ रु० ११००) री किमतरो अर रुपैया हजार एक रोक लेइनै श्री दरबार गया। रुपैया र सिरपेच नजरकीनो तद, रावजी श्री लूणकरणजी फरमायो अरज करौ! तिवारै रयणुजी अरजकरी—महाराज म्हे नवोमंदिर करावसां सो देहरै वास्तै जागांरी परवानगी दिवरावौ तिवारै श्री दरबार फरमायो आछी जागा सो थांरी, जावो सैहरमें थांरै चहीजे जितरी जमी देहरै वास्तै लेवौ म्हांरो हुकम छै पछै रयणुजी आपरै वल पड़ती जमीन लेयनै सं० १५७८ आसोज

सुदि १० श्री महावीरजी रै देहरै री नीवरो पायो भर्यो तठा पछै ताकीदसुं रूपचंदजी कमोजी नगोजी देहरै रो काम करावै छै रुपया हजार २५ देहरै वास्ते रयणुजी न्यारा राख दीना छै इणतरै देहरै रो काम हुयरेयो छै तिण समाजोगे सोहिलजी रो पुत्र रूपजी रो भाई खेतसीजी रो विवाह नागोरमें मंड्यौ तिण ऊपरै रयणुंजी, रूपचंदजी, कमाजी, नागोर गया भांडोजी नगोजी बीकानेर रह्या। रयणुंजी नागोर जांवतां रूपचंदजीरे कह्यै सुं देहरै रे कामरीभोलावण नगेजीने सूंपी रुपैया हजार १५ सौंप्या अर कह्यौ म्हांनै नागोरमें मास १० तथा १२ लागसो सुं देहरैरो काम ताकीद सुं करावजो! इसी भोलावण देनै रयणुजी नागोर गया हिवै नगोजी लारै देहरैरे कमठाणै रो काम करावै छै तिण समाजोगे कोडमदेसर रो वासी वैद सोनो घरमें भूखो उण आयनै नगोजीनै कह्यौ मनै देहरै रे कमठाणै ऊपर राखो! इसो कह्यां ठिकाणेदार जाण नगैजी कमठाणै ऊपर राख्यौ इणतरै राखतां थकां तीन पांती रो देहरो नगौजी सोनै हस्ते करायो तितरै रुपैया हजार १५ रयणुजी सूंप्या हुंता तिके लाग गया तिवारै सोने नगैजीनै कह्यौ कमठाणैनै वले रुपीया देवो तिवारै नगैजी कह्यौ अवार काम ढीलौ करौ वाबोजी आयां वले कमठाणौ करावसां इण तरै तीन पांतीरो देहरो महावीरजी रो करायौ।"

संभव है अवशेष काम वैदोंने करवाके पूर्ण किया हो। समयसुन्दरजीके स्तवनमें "कुंयले चैत्य करावियो धज दंड कलश प्रधान" लिखा है अतः इसकी प्रतिष्ठा कंवला (उपकेश) गच्छके आचार्यने ही कराई है। इस मन्दिरमें ५ देहरियां है जिनमें सहस्रफणा पार्श्वनाथजीकी प्रतिष्ठा सं० १६०५ वैशाख सुदि १५ को खरतर गच्छ नायक श्रीजिनसौभाग्यसूरिजीने की थी। उसके पासकी देहरीमें समस्त वैद्य संघकारित गिरनारतीर्थपट्ट, नेमि पंच-कल्याणकपट्ट आदि की प्रतिष्ठा सं० १६०५ माघ शुक्ला ५ को उपकेश गच्छाचार्य श्री देवगुप्तसूरिजीने की है। इस मंदिरके भूमिग्रहमें पहले बहुतसी प्रतिमाएँ होनेका कहा जाता है पर अब तो मूल मंदिरसे निकलते बांयें ओरकी देहरीमें भगवानके पव्बासनके नीचे ७५ धातु प्रतिमाएँ सुरक्षित हैं। जिन्हें सं० २००० में उपधान तपके उपलक्ष्यमें बाहर निकाली गई थीं। कहा जाता है कि यह देहरी श्रीयुक्त मुन्नीलालजी वैद (देवावत) ने बनवाई थी। यह मंदिर १४ गुवाड़का प्रधान मंदिर है।

श्री वासुपूज्यजीका मन्दिर

यह मंदिर श्री चिन्तामणिजीके पास जहाँ मत्थेरणोंके घर हैं, अवस्थित है। कहा जाता है कि यह बच्छावतोंका घर देरासर था। सं० १६३६ में सिरोहीकी लूटसे प्राप्त मूर्त्तियों में से श्री वासुपूज्य मुख्य चतुर्विंशति पट्टको मूलनायकके रूपमें स्थापित किया। तभी से यह वासुपूज्यजीके मंदिरके नामसे प्रसिद्ध हुआ। गर्भगृहके दाहिनी और बायीं ओर दो देहरिये हैं। इस मंदिरसे सटा हुआ दिगम्बर जैन मंदिर है।

श्री ऋषभदेवजी का मन्दिर

यह मन्दिर नाहटोंकी गुवाड़ में है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १६६२ के चैत्र वदि ७को युगप्रधान श्रीजिनचंद्रसूरिजीने की थी। इस समय अन्य ४० मूर्त्तियोंके प्रतिष्ठित होनेका उल्लेख सुमतिकल्लोल कृतस्तवन में है। मूलनायक श्री ऋषभदेवजी की प्रतिमा बड़ी मनोहर, विशाल (६८ अंगुलकी) और सप्रभाव होनेके कारण प्रतिदिन सैकड़ोंकी संख्यामें नरनारी दर्शनार्थ आते हैं। इस मंदिरको सुमतिकल्लोलजीने "शत्रुञ्जयावतार" शब्दोंसे संबोधित किया है। सं० १६८६ मिति चैत्र वदि ४ को चोपड़ा जयमा श्राविकाके बनवाई हुई श्री जिनचन्द्रसूरि मूर्त्ति श्री जिनसिंहसूरि चरण, मरुदेवीमाता व भरत चक्रवर्त्ती (हाथी पर आरूढ़) की मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा श्री जिनराज-सूरिजीने की थी उसके बाद सं० १६८७ ज्येष्ठ सुदि १० भौमवारको भरत-बाहुबलीकी प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा और सं० १६६० फागुण वदि ७ के गणधर श्री गौतमस्वामीके बिम्बकी प्रतिष्ठा श्री जिनराजसूरिजीने की थी। भमतीमें पांच पांडवोंकी देहरी है जिसमें पांच पांडवोंकी मूर्त्तियां सं० १७१३ आषाढ वदि ६ को स्थापित हुई। कुन्ती और द्रौपदीकी मूर्त्तियों पर लेख देखने में नहीं आते। इस देहरीके मध्यमें श्री आदीश्वरजीके चरण श्राविका जयतादे कारित व सं० १६८६ मार्गशीर्ष महीनेमें श्री जिनराजसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। उ० श्री धनराजके चरण मूल-नायकजी की प्रतिष्ठाके समय के व एक अन्य चरण सं० १६८५ के हैं।

श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर श्री ऋषभदेवजीके मन्दिरके अहातेमें है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १८२६ आषाढ़ सुदि ६ गुरुवारको श्री जिनलाभसूरिजीनेकी। यह मदिर बेगाणी अमोचंदजीके पुत्र बिभारामजी की पत्नी चितरंग देवी ओर मुलतानके भणसाली चौथमलजी की पुत्री बनीने बनवाया था।

श्री महावीरजी का मन्दिर (डागोंका)

यह मन्दिर श्री वासुपूज्यजी के पीछे और पुंजाणी डागोंकी पोलके सामने है। इस मन्दिर की प्रतिष्ठा का कोई निश्चित उल्लेख नहीं मिला पर श्रीजिनचंद्रसूरिजी के विहारपत्रमें सं० १६६३ में "तत्र प्रतिष्ठा" लिखा है जिससे संभव है कि यह उल्लेख इसी मन्दिर के प्रतिष्ठा का सूचक है। मूलनायकजीकी पीले पाषाण की प्रतिमा है जिस पर कोई लेख नहीं पाया जाता। मन्दिर के दाहिनी ओर देहरी में सं० ११७६ मिती मिगसर वदि ६ को जांगलकूप (जांगलू) के वीर-विधि-चैत्यमें स्थापित श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा का विशाल परिकर है जिसमें इसे श्रावक तिल्हक के निर्माण करवाने का उल्लेख है। विधि चैत्यका सम्बन्ध खरतर गच्छ से है, अतः तत्कालीन प्रभावक युगप्रधान श्रीजिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित होना विशेष संभव है। लेखका 'गुणरत्न रोहणगिरि' वाक्य श्रीजिनदत्तसूरिजी के गणधर सार्धशतक के "गुण मणि रोहण गिरिणो" आदि पद-से साम्य होनेके कारण भी इस सम्भावना की पुष्टि होती है।

श्री अजितनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर कोचरों की गुवाड़ में सिरोहियों के घरोंके पास है। जैसा कि हम आगे लिख चुके हैं इसका निर्माणकाल सं० १६७० के लगभग का है। मूलनायक श्रीअजितनाथजी की मूर्ति सं० १६४१ की प्रतिष्ठित है पर अन्य स्थान से लायी हुई ज्ञात होती है। इसी मंदिर में सं० १६६४ वैशाख शुक्ला ७ को विजयसेनसूरि प्रतिष्ठित हीरविजयसूरि मूर्ति है। बाह्यमण्डप के शिलापट्ट में सं० १८७४ में दीपविजयजीके उपदेशसे श्रीसंघके द्वारा प्रतिमंडप करानेका उल्लेख है और एक अन्य लेख में सं० १८५५ में इस मंदिर के जीर्णोद्धार ऋद्धिविजय गणि के उपदेश से होनेका उल्लेख है। उसके पश्चात् सं० १९९६ में इसका जिर्णोद्धार हुआ।

बीकानेर के प्राचीन एवं प्रधान ८ मंदिरों का परिचय उनके अन्तर्गत मंदिरों के साथ दिया जा चुका है। अब शहर के अन्य मंदिरों का परिचय देकर फिर बाहर के मंदिरों का परिचय दिया जायगा।

श्री विमलनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर कोचरोंकी गुवाड़में अजितनाथजी के मंदिर के पास है। सं० १९६४ माघ शुक्ला १३ शनिवार को कोचर अमीचंद हजारीमल ने इसकी प्रतिष्ठा करवाई। मूलनायक प्रतिमा सं० १९२१ माघ सुदि ७ को राजनगर में खेमाभाई कारित और शांतिसागरसूरि प्रतिष्ठित है। हीरविजयसूरि और सुधर्मास्वामी की चरणपादुका के लेखमें इस मन्दिर के वास्ते सीरोहिया तेजमालजी ने मेहता मानमलजी कोचरके हस्ते २६४ गज और डागा दूलीचंद ने गज ६५॥= डागा पूनमचंद की बहूके द्वारा गज १३८॥= जमीन देनेका उल्लेख मिलता है।

श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह जिनालय सं० १८८१ मिती जेठ सुदि १३ को हंसविजयजी के उपदेश से कोचर—सिरोहिया संघने उपर्युक्त मन्दिर के पास बनवाया।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर

उपर्युक्त मन्दिर से संलग्न है इसके निर्माण का कोई शिलालेख नहीं है। मूलनायक जी सं० १८९३ माघ सुदी १० प्रतिष्ठित है।

श्री शांतिनाथजी का देहरासर

यह देहरासर उपर्युक्त मन्दिर के पास कोचरों के उपासरे में है। इसके निर्माण का कोई उल्लेख नहीं मिलता। इसमें सं० १९६४ की प्रतिष्ठित साध्वी चंदनश्री की पादुका और सं० १९७२ की प्रतिष्ठित जैनाचार्य श्री विजयानंदसूरिजी की मूर्त्ति है।

श्री चन्द्रप्रभुजी का मन्दिर

यह मन्दिर बेगाणीयों की पोलके सामने है। शिलापट्ट के लेखमें सं० १८६३ भा० शुक्ला ७ को समस्त बेगाणी संघ द्वारा प्रासादोद्धार करवा कर श्री जिनसौभाग्यसूरिजी से प्रतिष्ठा करवानेका उल्लेख है।

श्री अजितनाथजी का देहरासर

यह रांगड़ी के चौकके पास श्री सुगनजी के उपासरे के ऊपर है। इसके निर्माण का कोई उल्लेख नहीं मिलता। मूलनायक प्रतिमा सं० १६०५ वैशाख शुदी १५ को कोठारी गेवरचंद कारित और श्रीजिनसौभाग्यसूरि प्रतिष्ठित है। इसके पासमें गुरु-मंदिर है जिसमें श्री जिनकुशलसूरिजी को मूर्त्ति सं० १६८८ माघ सुदि १० को नाहटा आसकरणजी कारित और उ० जयचन्द्रजी प्रतिष्ठित है। नीचे की एक देहरी में उ० श्रीक्षमाकल्याणजी की मूर्त्ति प्रतिष्ठित है।

श्री कुंथुनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर रांगड़ी के चौकके मध्यमें है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १६३१ मिति ज्येष्ठ सुदि १० को श्री जिनहंससूरिजी ने की। मूलनायकजी की प्रतिमा मिती वैशाख वदि ११ प्रतिष्ठित है। यह मंदिर उ० श्री जयचंद्रजी के स्वत्वमें है। इनकी गुरु परम्परा के ६ पादुकाओं की प्रतिष्ठा सं० १६५८ अषाढ़ सुदि ११ गुरुवार को हुई थी।

श्री महावीर स्वामीका मन्दिर

रांगड़ी के चौकके निकटवर्त्ती बोहरों की सेरीमें स्थित खरतर गच्छीय उपाश्रय के समक्ष यह सुन्दर और कलापूर्ण नूतन जिनालय श्रीमान् भैरूंदानजी हाकिम कोठारी की ओरसे बन कर सं० २००२ मिती मार्गशीर्ष शुक्ला १० के दिन श्रीपूज्य श्री जिनविजयेन्द्रसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हुआ। बीकानेरमें संगमर्मर के शिखरवाला यह एक ही जिनालय है। भगवान महावीर के २७ भव, श्रीपाल चरित्र, पृथ्वीचन्द्र गुणसागर चरित्र, आदि जैन कथानकों के भित्ति-चित्र बड़े सुन्दर निर्माण किये गये हैं मन्दिर में प्रवेश करते ही सामने के आलोंमें गौतम स्वामी और दादा साहब श्री जिनकुशलसूरिजी की प्रतिमाएँ विराजमान हैं। पहले यह मंदिर उपाश्रय के ऊपर देहरासर के रूपमें था जहाँ श्रीवासुपूज्य भगवान मूलनायक थे, वे अभी इस मन्दिर के ऊपर तल्लेमें विराजमान हैं।

श्री सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर नाहटों की गुवाड़ में छत्तीबाई के उपासरे से संलग्न है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १८७१ माघ सुदि ११ को श्री जिनहर्षसूरिजी द्वारा करने का उल्लेख जीतरंग गणिकृत स्तवन में पाया जाता है मन्दिर के शिलालेख में भी सं० १८७१ माघ सुदि ११ को श्रीसंघके कराने और श्री जिनहर्षसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है मूलनायक प्रतिमा युगप्रधान श्रीजिनचंद्र-

सूरिजीकी प्रतिष्ठित है। यहाँ सं० १६०४, १६०५, १६१६ में श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी प्रतिष्ठित कई प्रतिमाएँ हैं। दूसरे तल्लेमें दो देहरियाँ है जिनमें एकमें चौमुखजी हैं। खरतर गच्छ पट्टावली के अनुसार ऊपर तल्लेका मन्दिर श्रीसंघने सं० १६०४ माघ सुदि १० को बनाया और वहाँ श्री जिनसौभाग्यसूरिजी ने बिम्ब प्रतिष्ठा की। बगल की देहरी व ऊपर की कई प्रतिमाएँ सं० १६०४ ज्येष्ठ कृष्ण ८ शनिवार श्रीजिनसौभाग्यसूरि प्रतिष्ठित है। ये प्रतिमाएं यहीं प्रतिष्ठित हुई जिनका उल्लेख श्रीजिनसौभाग्यसूरि व अभय कृत स्तवनों में पाया जाता है।

श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर नाहटों की गुवाड़ में खरतराचार्य गच्छके उपाश्रय के सन्मुख है। इसका निर्माण सं० १८६७ बैशाख शुक्ल ६ गुरुवार को श्रीसंघ ने श्रीजिनोदयसूरि के समय में कराया। मूलनायकजी की प्रतिमा गोलछा थानसिंह मोतीलाल कारित और श्री जिनोदयसूरि प्रतिष्ठित है। बिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव गोलछा माणकचंदजी ने करवाया। इसके दोनों तरफ दो देहरियां हैं। एक अलग देहरी में गौतमस्वामी की मूर्त्ति व जिनसागरसूरि के चरण स्थापित हैं।

श्री पद्मप्रभुजी का देहरासर

यह पन्नीबाई के उपाश्रय में है। इसकी प्रतिष्ठा कब हुई यह अज्ञात है।

श्री महावीर स्वामीका मन्दिर

यह मन्दिर आसानियों के चौकमें संखेश्वर पार्श्वनाथजी के मन्दिर के संलग्न है। इसकी प्रतिष्ठा या निर्माणकाल का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

श्री संखेश्वर पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर उपर्युक्त मंदिर और पायचंदगच्छ के उपाश्रय से संलग्न है। यह भी कब बना अज्ञात है।

बीकानेर शहर में परकोटे अन्दर जो मन्दिर हैं उनका परिचय दिया जा चुका है अब परकोटे के बाहर के मन्दिरों का परिचय दिया जा रहा है।

श्री गौड़ी पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर गोगादरवाजा के बाहर बगीचेमें है। सं० १८८६ माघ शुदि ५ को १२०००) रुपये खर्चकर जैन संघ द्वारा श्रीजिनहर्षसूरिजी के उपदेश से प्रासादोद्धार कराने का उल्लेख शिलालेख में है। मन्दिर के मूलनायकजी सं० १७२३ में आद्यपक्षीय खरतर श्री जिनहर्षसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। मन्दिर की दाहिनी ओर श्री समेतशिखरजी का मन्दिर है जिसमें श्री समेतशिखरजी का विशाल पट्ट सं० १८८९ माघ शुक्ला ६ को सेठिया अमीचंद आदिने बनवाया और श्री जिनहर्षसूरिजी के करकमलों से प्रतिष्ठा करवाई। इस मन्दिरमें दोनों ओर दीवाल पर दो चित्र बने हुए हैं, जिनमें एक चित्र मस्तयोगी ज्ञानसारजी और अमीचंदजी

सेठिया का व दूसरा श्री जिनहर्षसूरिजी का है। इस मन्दिर के सन्मुख खरतर गच्छीय मथेन सामीदास की जीवित छतड़ी और उसकी पत्नीकी छतड़ी सं० १७६० की बनी हुई है। इसके आगे गुरु पादुका मन्दिर है। जिसमें दादा श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण और खरतर गच्छाचार्योंका पट्टावली पट्टक है जिसमें ७० चरण है, इसकी प्रतिष्ठा सं० १८६६ वैशाख शुक्ला ७ को उ० क्षमाकल्याणजी ने की थी। इस मन्दिर के दाहिनी ओर श्री आदिनाथजी का मन्दिर है जिसे सं० १९२३ फाल्गुन बदि ७ को खरतर गच्छीय दानसागर गणिके उपदेश से सुश्रावक धर्मचन्द्र सुराणा की पत्नी लाभकुंवर बाईने बनवाया। यहां ओलीजीमें नवपद मंडल की रचना सं० १९१६ से प्रारम्भ हुई, तत्कालीन महाराजा श्री सरदारसिंहजी ने स्वयं समारोह पूर्वक आकर ११) भेंट किये। सं० १९१७ के आश्विन सुदि ७ को पुनः नवपद मंडल रचा गया, महाराजा ने आकर ५०) रु० भेंट किये और प्रति वर्ष पूजाके लिए ५०) देनेका मंत्रीको हुक्म दिया इस मन्दिर के सन्मुख सुन्दर बगीचा लगा हुआ है जिसके कारण मन्दिर की शोभामें अभिवृद्धि हो गई है।

श्री संखेश्वर पार्श्वनाथ (सेढूजीका) मन्दिर

यह मन्दिर उपर्युक्त बगीचे में प्रवेश करते दाहिने हाथकी ओर है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १९०४ में समुद्रसोमजी (सेढूजी) ने स्वयं इस मन्दिर को बनवा कर की। यद्यपि यह मन्दिर पार्श्वनाथ भगवान का है पर यतिवर्य्य सेढूजी के बनवाया हुआ होनेसे उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है। मूलनायक श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा सं० १९१२ प्रतिष्ठित है। इस मन्दिर के दाहिनी ओर शालामें १ सुमतिविशाल २ सुमतिजय ३ गजविनय और समुद्रसोमजी के चरण प्रतिष्ठित थे जो शालाके भग्न हो जानेसे मन्दिर के पार्श्ववर्त्ती श्रीमद् ज्ञानसारजी के समाधिमंदिर में रख दिये गये हैं।

श्री ज्ञानसार समाधिमन्दिर

श्रीमद् ज्ञानसारजी १९ वीं शताब्दी के राजमान्य परम योगी, उत्तम कवि और खरतर गच्छके प्रभावशाली मुनिपुङ्गव थे। उन्होंने अपने अंतिम जीवन के बहुत से वर्ष गौड़ी पार्श्वनाथजी के निकटवर्त्ती ढढोंकी साल आदि में बिताये थे। सं० १८९८ में आपका स्वर्गवास हुआ। उनके अग्निसंस्कार स्थल पर यह मन्दिर बना जिसमें आपके चरण सं० १९०२ में प्रतिष्ठित है।

कोचरोंका गुरु मन्दिर

गौड़ी पार्श्वनाथजीसे स्टेशनकी ओर जाती हुई सड़कपर यह गुरुमंदिर हाल ही में बना है। इसकी प्रतिष्ठा सं० २००१ वैशाख सुदि ६ शुक्रवार को तपागच्छीय आ० श्रीविजयवल्लभसूरिजी ने की है इसमें प्रवेश करते ही सामने कलिकाल सर्वज्ञ श्रीहेमचंद्रसूरि, जगद्गुरु श्रीहीरविजयसूरि और जैनाचार्य श्री विजयानंदसूरिजी की मूर्तित्रय स्थापित है। उसके पीछे की ओर श्री पार्श्वनाथ स्वामी का मन्दिर है जिसमें सं० २००० वैशाख सुदि ६ को रायकोट

में प्रतिष्ठित पार्श्वनाथ प्रतिमा है। गुरु मन्दिर के आगे पार्श्वयक्ष व मणिभद्र व पद्मावती देवी की मूर्तियां है।

नयो दादावाड़ी

यह उपर्युक्त मन्दिर के पास मरोठी एवं दूगड़ों की बगीची में है। इसमें श्री जिनेश्वरसूरि, अभयदेवसूरि, श्री जिनकुशलसूरि और श्री जिनचन्द्रसूरि—पांच गुरुदेवों के चरण दूगड़ मंगलचन्द हनुमानमल कारित और सं० १९९३ मिती ज्येष्ट बदि ६ के दिन श्रीपूज्य श्री जिन—चारित्रसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है।

महोपाध्याय रामलालजीका स्मृतिमंदिर

यह स्थान भी उपर्युक्त गंगाशहररोड पर श्री पायचन्दसूरिजी के सामने है। इसमें सं० १९९७ ज्ये० सु० ५ प्रतिष्ठित श्री जिनकुशलसूरि मूर्त्ति व चरण स्थापित है उसके सामने महो० रामलालजी यतिकी मूर्ति स्थापित है। जिसे उनके शिष्य क्षेमचन्द्रजी और प्रशिष्य बालचन्द्रजी यति ने बनवाकर सं० १९९७ मिती ज्येष्ठ सुदि ५ को प्रतिष्ठित की।

यति हिम्मतविजयकी बगीची

यह भी गंगाशहर रोडपर है इसमें श्री गौड़ी पार्श्वनाथजी, सिद्धिविजय (सं० १९०२) और सुमतिविजय (सं० १८५३ प्रतिष्ठित) के चरण हैं।

श्रीपायचंदसूरिजी

यह मन्दिर श्री गंगाशहर रोडपर है। नागपुरीय तपागच्छ के श्री पार्श्वचन्द्रसूरिजी की स्मृति में सं० १६६२ पोषवदि १ को महं० नवू के पुत्र महं० पोमा ने श्री पार्श्वचन्द्रसूरिजी का स्तूप बनवा कर चरण स्थापित किये। इसके आसपास विवेकचन्द्रसूरि पादुका, लब्धिचन्द्रसूरि, कनकचन्द्रसूरि, नेमिचन्द्रसूरि आदिकी पादुकाएं व स्तूप-शालादि हैं। पीछे से यहां श्री आदिनाथ भगवान का भव्य और शिखरबद्ध मन्दिर निर्माण किया गया है। इस मन्दिरमें भातृचन्द्रसूरिजी की मूर्ति सं०१९९२ की प्रतिष्ठित है।

श्री पार्श्वनाथ मंदिर (नाहटोंकी बगेची)

यह मंडलावतों (हमालों) की बारी के बाहर टेकरी के सामने है। यह स्थान पहले स्थानकवासी यति पन्नालालजी आदिका निवास स्थान था। हनुमान गजलमें जो कि सं०१८७२ में रचित है, इस बगीची के बाहर पार्श्वनाथ गुफा का उल्लेख किया है। मूलनायक श्री पार्श्वनाथजी हैं, जिस पर कोई लेख नहीं है। अभी यह बगीची नाहटों की कहलाती है श्री मूलचन्दजी नाहटा ने अभी इसका सुन्दर जीर्णोद्धार करवाया है।

रेलदादाजी

यह स्थान बीकानेर से १ मील, गंगाशहर रोड पर है। सं० १६७० में युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजी का बिलाड़े में स्वर्गवास होनेके पश्चात् भक्तिवश बीकानेर के संघ ने गुरुमन्दिर बनवाकर सं० १६७३ को मिती बैशाख सुदि ३ को स्तूपमें चरण पादुकाओं की प्रतिष्ठा करवाई। उसके पश्चात् सं० १६७४ (मेड़ता) में स्वर्गस्थ श्री जिनसिंहसूरिजी का स्तूप बनवाकर उसमें सं० १६७६ मिती जेठ वदि ११ को चरण स्थापित किए। इसके अनन्तर इसके आसपास यति, श्रीपूज्य, साधु-साध्वियों का अग्निसंस्कार होने लगा और उन स्थानों पर स्तूप, पदुकाएं, चौकियां आदि बनने लगीं। अभी यहां १०० के लगभग स्तूप व चरण पादुकाएं विद्यमान हैं। प्रतिदिन और विशेष कर सोमवार को यहां सैकड़ों भक्त लोग दर्शनार्थ आते हैं। सं० १९८६ में श्री मोतीलालजी बांठिया की ओर से इसका जीर्णोद्धार हुआ है और सं० १९८७ ज्येष्ठ सुदी ५ रविवार को जिनदत्तसूरि मूर्त्ति, श्रीजिनदत्तसूरि, श्रीजिनचन्द्रसूरि, जिनकुशल सूरि और जिनभद्रसूरि के संयुक्त चरण पादुकाओं की प्रतिष्ठा हो कर युगप्रधान श्री जिनचन्द्र-सूरिजीके स्तूप से संलग्न सुन्दर छत्रियों में स्थापित किए गए हैं। यहांके लेखों से बहुत से यति साधुओं के स्वर्गवास का समय निश्चित हो जाता है, इसलिए यह स्थान ऐतिहासिक दृष्टिसे महत्त्व का है। बीचके खुले चौकमें संगमरमरका एक विशाल चबूतरा बना है जिसमें आदर्श साध्वीजी श्री स्वर्णश्रीजी की चरण पादुकाएं स्थापित हैं। चार दीवारी के बाहर आचार्य श्री जयसागरसूरिजी की छतरी भी हाल ही में बनी है।

शिवबाड़ी

यह सुरम्य स्थान बीकानेरसे ३ मील की दूरीपर है। शिवजी (लालेश्वर महादेव) का मन्दिर होनेसे इस स्थान का नाम शिवबाड़ी है यहां के बगीचे में एक सुन्दर तालाब है। श्रावण महीने में तालाब भरजाता है और यहां कई मेले लगते हैं। श्रावण सुदि १० को जैन समाज का मेला लगता है उस दिन वहां पूजा पढाने के पश्चात् भगवान की रथयात्रा निकालकर बगीचेमें तालाब के तट पर लेजाते हैं और वहां स्नात्रपूजादि कर वापिस मन्दिर में ले आते हैं।

श्री पार्श्वनाथजीका मन्दिर—इसे उ० श्री सुमतिमंडनगणि (सुगनजी महाराज) के उपदेश से बीकानेरनरेश श्रीडूंगरसिंहजी के बनवाने का उल्लेख मोतीविजयजी कृत स्तवन में है। दादासाहब के चरणों के लेखके अनुसार इसका निर्माण सं० १९३८ में हुआ था। मूलनायकजी की प्रतिमा सं० १९३१ में श्रीजिनहंससूरि द्वारा प्रतिष्ठित है। दादासाहबके चरण व चक्रेश्वरीजी की मूर्त्ति श्री सेसकरणजी सावणसुखा की ओर से स्थापित है।

ऊदासर

बीकानेर से ६ मील की दूरी पर यह गांव है। यहां ओसवालोंके १०० घर हैं।

श्री सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर—इस मन्दिर को श्री सदारामजी गोलछा ने बनवाया था

मूलनायक श्री सुपार्श्वनाथजी की प्रतिमा सं० १६३५ में श्री जिनहंससूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित और बीकानेर संघ कारित है। यह मन्दिर सं० १६३५ के आसपास निर्मित हुआ।

गंगाशहर

यह बीकानेर से १॥ मील दूर है यहां ओसवालोंके ७५० घर हैं।

रामनिवास

यह मन्दिर गंगाशहरमें प्रवेश करते ही सड़क पर स्थित श्रीरामचन्द्रजी बांठिया की बगीचीमें है। इसके मूलनायक श्री पार्श्वनाथजी की प्रतिमा सं० १६०५ वैशाख शु० १५ को श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। इसका प्रबन्ध श्री रामचन्द्रजी के पौत्र श्रीयुक्त फौजराजजी बांठिया करते है।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर गंगाशहर में सड़क के ऊपर है। श्री सुमतिमण्डन गणि (सुगनजी महाराज) कृत स्तवन में प्रभु की प्रतिष्ठा का समय १६०० मि० सु० १५ को होनेका उल्लेख है। पर स्तवन की अशुद्ध प्रति मिलने से संवत् संदिग्ध है। दादासाहब के चरणों पर सं० १६७० ज्येष्ठ वदि ८ को सावणसुखा सँसकरणजी ने ऋषभमूर्त्ति, दादासाहब के चरण व चक्रेश्वरी देवी की मूर्त्ति को इस मन्दिर मे पधराने का लिखा है। इसकी देखरेख श्री सुगनजी के उपाश्रय के कार्यकर्ता करते है।

भीनासर

श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह विशाल मन्दिर भीनासर के कूएं के पास है। इसे सं० १६२६ मिती चैत्र सुदि १ के स्तवन में मंत्रीश्वर कोचर साहमलजी ने बनवाया लिखा है। इसके मूलनायक सं० ११८१ श्री जिनदत्तसूरि प्रतिष्ठित हैं। इसका प्रबन्ध कोचरों के हाथ में है। यहाँ ओसवालों के १७२ घर हैं। यह स्थान बीकानेर से ३ मील और गंगाशहर से संलग्न है।

श्री महावीर सिनोटरियम

उदरामसर के धोरों पर वैद्यवर श्री भैरवदत्तजी आसोपाने ये आश्रम स्थापित किया है। हिन्दू मन्दिरों के साथ जैन मन्दिर भी होना आवश्यक समझ कर श्री आसोपाजी ने विदुषी आर्या श्री विचक्षणश्रीजी से प्रेरणा की, उनके उपदेश से जैन संघकी ओर से बीकानेर के चिन्तामणिजी के मन्दिरवर्त्ती श्री शान्तिनाथ जिनालय से पार्श्वनाथ प्रभु की मूर्त्ति ले जाकर स्वतन्त्र मन्दिर बनवा कर स्थापित की गई है।

उदरामसर

श्री कुंथुनाथजी का मन्दिर

यह ग्राम बीकानेर से ७ मील दक्षिण में है। यहाँ ओसवालों के ३० घर हैं। सं० १९८८ में बोथरा हजारीमलजी आदि ने खरतर गच्छीय उपाश्रय के ऊपर इस मन्दिर को बनवा कर माघ सुदि १० उ० जयचन्द्रजी गणि से प्रतिष्ठा करवाई।

श्री जिनदत्तसूरि गुरु मन्दिर

यह दादावाड़ी गांव से १ मील दूरी पर अवस्थित है इसकी चरण पादुकाओं पर सं १७३५ में बीकानेर के संघके बनवाने का लेख है। इसका जीर्णोद्धार जेसलमेर के सुप्रसिद्ध बाफणा बहादुरमलजी आदि ने श्री जिनहर्षसूरिजी के उपदेश से सं० १९९३ मिति आषाढ़ सुदि १ को करवाया था। इस मन्दिर के बाहर नवचौकिये के पास महो० रघुपतिजी और उनके शिष्य जगमालजी के स्तूप है कविवर रघुपतिजी यहाँ बहुत समय तक रहे थे उन्होंने उदरामसर के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखा है :—

प्रथम सुक्ख पोसाल मिष्ट पाणी सुख दूजौ।
तीजौ सुख आदेश पादुका चौथे पूजौ।
पांचमै सुख पारणौ खीर दधि मुगतौ खावौ।
छट्ठै सुख श्री नगर दौड़ता आवौ जावौ।
गुरु ज्ञान ध्यान श्रावक सको नमण करै सिर नामनै।
रघुपति अठै ए सात सुख क्यूं छोड़ां ए गामनै ॥१॥
बूढ़ापैसुखिया रह्यां उदयरामसर आय।
पूरब पुण्य प्रमाणतें रघुपत्ति ऋद्धि सवाय॥
बाण खितक रूपक्क बास पेलै वरणाया।
सीपाणी श्रावक्क सोखव्या हरख सवाया॥
आहार पाणी अवल प्रघलि बलि परिपाटी॥
आदर खाणी मान अपार खूब जसवारां खाटी॥
पर गच्छ हुता पण प्रेम सुं कथन शुद्ध सेवा करी।
इण रीत आठ दस वरसमें श्री रघुपति लीला करी॥

यहाँ प्रति वर्ष भाद्रपदशुक्ला १५ को मेला भरता है जिसमें मोटर, गाड़ी, इक्के, ऊँठ, घोड़े आदि सैकड़ों सवारियों पर यात्री लोग एकत्र होते हैं। दादासाहब की पूजा, गोठें आदि होती हैं यह मेला सर्व प्रथम सं० १८८४ में श्रीमद् ज्ञानसारजी के शिष्य सदासुखजी ने चालू किया था जिसका उल्लेख सेवग हंसजी कृत गीतमें पाया जाता है।

सं० १६४४ की शत्रुंजय चैत्यपरिपाटी,में गुणविनय गणि ने लिखा है कि संघने जेठ सुदि ६ को ओसियां पहुंच कर जेठ सुदि १३ को रोहगाम में श्रीजिनदत्तसूरिजी को वन्दन किया फिर जेठ सुदि १५ को भींदासर (वर्त्तमान भीनासर) में स्वधर्मीवात्सल्यादि कर संघ अपने घर-बीकानेर लौटा। ओसियां से ७ दिन और भीनासर से २ दिन के रास्ते का रोहगाम जिसमें श्री जिनदत्त सूरिजी का स्थान था हमारे खयाल से उपरोक्त उदरामसर के निकटवर्ती दादावाड़ी वाला स्थान ही रोहगाम होना चाहिए।

देशनोक

यह ग्राम बीकानेर से १६ मील दूरी पर है। बीकानेरसे मेड़ता रोड जानेवाली रेलवे लाइन का यह दूसरा स्टेशन है। यहाँ ओसवालों के १०० घर हैं। यहाँ राजमान्य करणी माता का प्रसिद्ध स्थान है। यहाँ तीन जैन मन्दिर और एक दादावाड़ी है। परिचय इस प्रकार है।

श्री संभवनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर आंचलियों के वासमें है। शिलापट्ट के लेख में इसकी प्रतिष्ठा सं० १८६१ माघ शुक्ला ५ को क्षमाकल्याणजी महाराज ने की लिखा है। वा० श्री कुशलकल्याण गणि के उपदेश से संघ ने इस मन्दिर को बनवाया था। शिलालेख में "पार्श्वनाथ देवगृहकारितं" लिखा है पर इसके मूलनायक सं० १८६ वैशाख शुक्ला ७ को जिनहर्षसूरि प्रतिष्ठित श्री संभवनाथ भगवानकी प्रतिमा है। उ० श्री क्षमाकल्याणजी कृत स्तवनमें भी संभवनाथजी का नाम है।

श्री शांतिनाथजी का मंदिर

यह मन्दिर भूरोंके वास में है। सं० १८६१ माघ सुदि ५ को श्री अभयविशालजी के उपदेश के श्री संघ के शाला बनवाने का उल्लेख है। क्षमाकल्याण जी के स्तवन में देशनोक के सुविधिनाथ मन्दिर की प्रतिष्ठा सं० १८७१ माघ सुदि ५ को होने का उल्लेख है। देशनोक में श्री सुविधिनाथजी का अन्य कोई मंदिर नहीं है अतः सभव है इस मंदिर के मूलनायकजी पीछे से परिवर्त्तित किये गये हैं।

श्री केसरियाजी का मंदिर

यह मन्दिर लौकागच्छ के उपाश्रय के पास है। यह मन्दिर थोड़े वर्ष पूर्व प्रतिष्ठित हुआ है।

दादावाड़ी

यह स्थान स्टेशन के मार्गमें है। इसे सं० १६६५ ज्येठ सुदि १३ को उपाध्याय मोहनलालजीने स्थापित एवंप्रतिष्ठित किया। इसमें श्री अभयदेवसूरिजी, श्री जिनदत्तसूरिजी, मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी एवं श्री जिनकुशलसूरिजी के चरण हैं। दादावाड़ी की शाला में सं० १८६४ आषाढसुदि १ को सुगुणप्रमोदजी के पीछे विनयचंद्र और मनसुख के इसे

कराने का शिलालेख लगा है। इसी समय के प्रतिष्ठित हाथीरामजी के चरण भी स्थापित हैं। इसका प्रबन्ध बीकानेर के उ० श्री जयचन्द्रजी यतिके शिष्य के हस्तगत है।

नाल

यह गाँव बीकानेर से ८ मील दूरी पर है। कोलायत रेलवे लाइन का दूसरा स्टेशन है। गांव स्टेशन से लगभग १ मील दूर है, बीकानेर से प्रतिदिन मोटर-बस भी जाती है। पुराने स्तवनों में इसका नाम गढाला लिखा है। यहाँ अभी २३ घर ओसवालों के हैं। यहाँ की जलवायु अच्छी है। यहाँ दो जैन मन्दिर और श्री जिनकुशलसूरिजी का प्राचीन स्थान है।

श्री जिनकुशलसूरिजी का मन्दिर

कर्मचन्द्र मंत्रि वंश प्रबन्ध के अनुसार मंत्री बरसिंहजी देरावर यात्रा के लिए जाते हुये यहाँ ठहरे। उन्हें आगे जानेमें असमर्थ देखकर रातके समय गुरुदेव ने स्वप्न में दर्शन देकर यहीं उनकी यात्रा सफल करदी थी। अतः उन्होंने यहाँ गुरुदेव का स्थान बनवाकर चरण स्थापित किये। ये चरण बड़े चमत्कारी हैं, दूर होने पर भी कई लोग प्रति सोमवार को दर्शन पूजन करने जाते हैं। यहाँ कार्तिकसुदि १५ को मेला लगता है और फाल्गुन वदी १५ को भी पूजादि पढ़ाई जाती है। इसका जीर्णोद्धार सं० १९९६ में श्रीयुक्त भरूदानजी हाकिम कोठारी ने बहुत सुन्दर रूप में करवाया है। श्री जिनभक्तिसूरिजी और पुण्यशीलकृत स्तवनों में उल्लेख है कि बीकानेर के महाराजा श्री सुजाणसिंहजी की स्वर्गीय गुरुदेव के शत्रुओं के भय से रक्षा की थी। सं० १८७३ के वैशाखसुदि ६ को महाराजा सूरतसिंहजी ने दादासाहब की भक्ति में ७५० बीघा जमीन भेंट की थी जिसका ताम्रशासन बड़े उपाश्रय में विद्यमान है।

दादासाहब के मन्दिर के पास एक चौकी पर चौमुख स्तूप है जिसमें उ० सकलचन्द्रजी और समयसुन्दरजी के चरण प्रतिष्ठित हैं। अन्य शालाओं में बहुत से चरण व कीर्तिरत्नसूरिजी के स्तूप आदि हैं। पास ही खरतराचार्य शाखा की कोटड़ी में इस शाखा के श्रीपूज्यादिके चरणादि हैं।

श्री पद्मप्रभुजी का मन्दिर

यह जिनालय गुरु मन्दिर के अहाते में है। इसकी प्रतिष्ठा पट्टावलीमें सं० १९१६ वैशाख वदि ६ को श्री जिनसौभाग्यसूरिजी द्वारा होना लिखा है।

श्री मुनि सुव्रतजी का मन्दिर

यह गुरु मंदिर के गढ़ से बाहर है। इसका निर्माण काल अज्ञात है। मूलनायकजी सं० १९०८ में श्री जिनहेमसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

श्री जिनचारित्रसूरि स्मृति मन्दिर

श्री जिनकुशलसूरिजी के मंदिर के बाहर दाहिनी ओर श्री दीपचंदजी गोलछा ने यह मंदिर बनवा कर श्रीपूज्य श्री जिनचारित्रसूरिजी की मूर्ति प्रतिष्ठित करवायी है।

जांगलू

देशनोक से १० मील है, यह गांव बहुत प्राचीन है। सं० ११७६ का जांगलकूप के उल्लेखवाला परिकर बीकानेर के डागों के श्री महावीरजी के मन्दिर में है। यहां अभी ओसवालों का केवल १ घर है।

श्री पार्श्वनाथजी का मंदिर

सं० १८६० मिती कार्तिक वदि १३ को बनाये जानेका उल्लेख शिलापट्ट पर है। मूलनायक पार्श्वनाथजी और दादासाहब श्री जिनकुशलसुरिजी के चरण सं० १८८७ मिती आषाढसुदि १० को श्री जिनहर्षसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हैं। सिद्धचक्रजी के यंत्र पर सं० १८८५ मिती आसोजसुदि ५ को जागलू के पारख अजयराजजी के पुत्र तिलोकचन्दजी द्वार बनवाकर श्री जिनहर्षसूरिजी से प्रतिष्ठा कराने का उल्लेख है। यह मन्दिर भी पारखों का बनवाया हुआ है।

पांचू

ये देशनोक से लगभग २० मील की दूरी पर है, यहाँ श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर है जिसका निर्माण काल अज्ञात है।

नोखा-मंडी

यह मंडी बीकानेर से मेड़ता जानेवाली रेल्वे का (४० मील दूरी पर) चौथा स्टेशन है। यहाँ ओसवालों के ७० घर हैं।

श्री पार्श्वनाथजी का मंदिर

इस मन्दिर के मूलनायकजी व गुरूपादुकादि जंसलसर के मन्दिर से लाये गये हैं। सं० १९९७ मिती माघसुदि १४ को श्री विजयलक्ष्मणसूरिजी ने इसकी प्रतिष्ठा की।

झज्झू

यह गांव बीकानेर से २७ मील पश्चिम और कोलयत रेलवे स्टेशन से ६ मील है। यहां ओसवालों के २५ घर है। यहा दो मन्दिर और दो उपाश्रय हैं।

श्री नेमिनाथजी का मन्दिर

यह बेगानियों के बासमें है, इसके निर्माण कालका कोई उल्लेख नहीं मिलता और न मूलनायकजी पर ही कोई लेख है। इस मन्दिर में सप्तफणापार्श्वनाथजी की धातु मूर्त्ति पर सं० १०२१ "क्षिपत्यकूप चैत्ये स्नात्र प्रतिमा" का लेख है। श्रीजिनदत्तसूरि और श्रीजिनकुशलसूरिजी के चरण झज्झूके श्री संघ कारित, और सुमतिशेखरगणि द्वारा प्रतिष्ठित हैं। पं० सदारंग मुनिके चरण सं० १९०४ के हैं।

श्री नेमिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर सेठियों के वासमें लुंकागच्छ के उपाश्रय में है। मूलनायक सं० १९१० में श्रीजिनसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित हैं।

नापासर

यह बीकानेर से १७ मील है, दिल्ली जानेवाली रेलवे लाइन का दूसरा स्टेशन है। स्टेशन से लगभग १ मील गांवमें यहाँ मन्दिर है। यहाँ अभी ओसवालों की बस्ती नहीं है। पूजाका प्रबन्ध बीकानेरके श्री चिन्तामणिजी के मन्दिर की पेढीसे होता है।

श्री शान्तिनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर सेठिया अचलदास* ने सं० १७३७ से पूर्व बनवाया था सं० १७३७ मिती चैत वदि १ को प्रतिष्ठित श्रीजिनदत्तसूरिजी, श्रीजिनकुशलसूरिजी और सेठ अचलदास की पादुका इस मन्दिर में विद्यमान है। कविवर रघुपत्ति के उल्लेखानुसार यहाँ सं० १८०२ में मूलनायक अजितनाथ भगवान थे। सं० १७४० में कवि यशोलाभ ने धर्मसेन चौपाई में अजितनाथ व शांतिनाथ लिखा है। पर अभी सं० १५७५ प्रतिष्ठित श्री शांतिनाथ भगवान की प्रतिमा मूलनायक है। १९५६ में हितवल्लभगणि के उपदेश से बीकानेर के संघकी ओरसे इसका जीर्णोद्धार हुआ था। कुछ वर्ष पूर्व इस मन्दिर उपाश्रय और कुण्डका जीर्णोद्धार बीकानेर संघने पुनः करवाया है।

डूंगरगढ़

यह उपर्युक्त रेलवे लाइन का छठा स्टेशन है। बीकानेर से ४६ मील है। स्टेशन से १ मील दूर शहर में ओसवालों के ४० घर हैं। मन्दिर का प्रबन्ध स्थानीय पंचायती के हाथमें है।

श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर ऊँचा बना हुआ है। इसके निर्माणकाल का कोई पता नहीं। मूलनायक श्री पार्श्वनाथजी की लघु प्रतिमा है।

बिगा

यह भी उपर्युक्त रेलवे लाइन का ७ वां स्टेशन तथा डूंगरगढ़ से ८ मील है। यहाँ ओसवालों के ३ घर हैं।

---

* दायय सुख देहरौनगर सखरै नापासरं। मां है मोटे मंडाण जागती मूरति जिनवर ॥ पासैहिज पौसाल साधतिण बहुसुख पावै। भल श्रावक भावीक दीपता चढ़ते दावै ॥ अचलेश सेठ हुवो अमर, जिणे सुत पंच जनम्मिया। जीतब्ब धन्न रघुपति जियां, कलिनामा अविचल किया ॥ १ ॥

श्री शांतिनाथजी का मन्दिर

कुछ वर्ष पूर्व मूलनायक भगवान की मूर्त्ति सेवक के घरमें थी। अभी बीकानेर के संघ और स्थानीय चतुर्भुजजी डागाने अलग मन्दिर बनवा कर इस मूर्त्तिको स्थापित किया है।

राजलदेसर

यह बिगा से दूसरा स्टेशन है और यहाँ से २१ मील है। यहां ओसवालों के ४०० घर हैं। स्टेशन से गांव १ मील दूर है। बाजार के मध्यमें श्री आदिनाथजी का मन्दिर है।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर

यह सं० १५८४ में प्रतिष्ठित है, सं० १७२१ में वैद मुंहता शेरसिंह ने इसका जीर्णोद्धार कराया था।

रतनगढ़

यह दिल्ली लाइन का मुख्य जंकसन और बीकानेर से ८५ मील है। यहां ओसवालों के २०० घर हैं। बाहर में श्री आदिनाथजी का मन्दिर और बाहर दादावाड़ी है। मंदिर से संलग्न खरतर गच्छका उपाश्रय है।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर

इसका निर्माण समय अज्ञात है। पट्टके अनुसार सं० १६५७ के लगभग मन्दिर का निर्माण हुआ मालूम होता है।

श्री दादाबाड़ी

इसमें श्रीजिनकुशलसूरिजी के चरण सं० १८६३ माघ वदि ५ के प्रतिष्ठित हैं। श्रीजिनदत्तसूरिजी के छोटे चरणों पर कोई लेख नहीं है।

बीदासर

यह रतनगढ़ से सुजानगढ़ जानेवाली रेलवे के छापर स्टेशन से कुछ मील दूर है। इस गांवमें ओसवालों के ४५० घर है। खरतर गच्छके उपाश्रय में देहरासर है जिसमें श्री चन्द्रप्रभुजी की मूर्ति विराजमान है। दादासाहब के चरण सं० १६०३ के प्रतिष्ठित हैं।

सुजानगढ़

यह इस लाइन में बीकानेर रियासत का अन्तिम स्टेशन है। यहां ओसवालों के ५५० घर हैं। लौंका गच्छ और खरतर गच्छके २ उपाश्रय, २ मन्दिर और दादाबाड़ी है।

श्री पार्श्वनाथजी का मदिर

यह सौधशिखरी विशाल जिनालय श्री पनाचंदजी सिंघीके अमर कीर्ति कलाप का परिचायक है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १६७१ माघ सुदि १३ को श्रीजिनचारित्रसूरिजी ने की। इस

मन्दिर की नींव सं० १९६२ में डाली गई थी, इस मन्दिर के बनवाने में "जेसराज गिरधारीलाल" फर्मकी ओरसे द्रव्य व्यय हुआ जिसके ३ हिस्सेदार थे १ पनाचंदजी २ इन्द्रचंदजी ३ व वच्छराज जी सिंघी। यह मदिर ऊँचे स्थान पर दो मंजिला बना हुआ है। दोनों तरफ श्रीजिनदत्तसूरिजी और श्रीजिनकुशलसूरिजी के मन्दिर हैं जिनमें सं० १९३३ माघ शुक्ला ३ को प्रतिष्ठित चरण पादुकाएँ विराजमान हैं। इस मन्दिर के पीछे कई मकानात आदि जायदाद है।

श्री आदिनाथजी का मन्दिर

यह खरतर गच्छके उपाश्रय से संलग्न है। इसकी प्रतिष्ठा सं० १८८४ अषाढ़ सुदि १० बुधवारको होनेका उल्लेख यति दूधेचंदजी के पासकी बही में पाया जाता है।

दादावाड़ी

यह सिंघीजी के मन्दिरसे कुछ दूरी पर है। दादा साहब श्रीजिनकुशलसूरिजी के चरणोंकी प्रतिष्ठा सं० १८६० मिती वैशाख सुदि १० को हुई थी। इसी मितीकी प्रतिष्ठित भाव विजयजी की पादुका है।

नई दादावाड़ी

यह स्टेशनके पास है। इसे पनाचंद सिंघी की पुत्री श्रीमती सूरजबाईने बनवाकर इसमें सं० १९६७ मिती आषाढ़ सुदि १० को गुरुदेवके चरण प्रतिष्ठापित कराए हैं।

सरदार शहर

रतनगढ जंकसन से सरदार शहर जाने वाली रेलवेका अंतिम स्टेशन है। यह रतनगढ़से ४१ मील है। बीकानेरके बाद ओसवालों के घरोंकी संख्या सबसे ज्यादा यहीं है। यहां ओसवालों के कुल १०३८ घर हैं। यहां २ जैन मंदिर और १ दादावाड़ी है।

श्री पार्श्वनाथजी का मन्दिर

इसे सं० १८९७ मिती फागुण सुदि ५ को सुराणा माणकचंदजीने बनवाकर प्रतिष्ठित करवाया। इसका जीर्णोद्धार सं० १९४७ में बीकानेर के मुँहता मानमलजी कोचर के मारफत हुआ। अभी भी स्थानीय पंचायतीकी ओरसे जीर्णोद्धार चालू है।

श्री पार्श्वनाथजी का नया मन्दिर

यह मंदिर श्रीमान् वृद्धिचंदजी गधैयाकी हवेलीके पास है। इसका निर्माण काल अज्ञात है। यह मंदिर गोलछोंका बनवाया हुआ है।

दादावाड़ी

इसमें श्रीजिनकुशलसूरिजी और शांतिसमुद्रगणिके चरण सं० १९११ अषाढ़ वदि ५ के प्रतिष्ठित हैं। खरतर गच्छ पट्टावलीमें जिनकुशलसूरिजी के चरणक मंदिरकी प्रतिष्ठा सं० १९१० वैशाखमें बोथरा गुलाबचंदने श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी से करवाई, ऐसा उल्लेख है।

चूरू

यह शहर बीकानेर से दिल्ली जानेवाली रेलवे लाइनका मुख्य स्टेशन है और रतनगढ़ से २६ मील है। यहां ओसवालोंके २६० घर हैं। यहां खरतरगच्छका बड़ा उपाश्रय, मंदिर और दादाबाड़ी है। इन सबकी व्यवस्था यतिवर्य श्री ऋद्धिकरणजी के स्टेट संरक्षक ट्रस्टी गण करते हैं।

श्री शांतिनाथजी का मन्दिर

यह मंदिर बाजारमें खरतरगच्छके उपाश्रयसे संलग्न है। इस मन्दिरका निर्माण समय अज्ञात है। जीर्णोद्धार यति ऋद्धिकरणजी ने बहुत सुन्दर (सं० १९८१ से १९९६ तक) प्रचुर द्रव्य व्ययसे करवाया है। मूलनायकजी की प्रतिमा सं० १६८७ में विजयदेवसूरि प्रतिष्ठित है।

दादावाड़ी

यह भगवानदास बागलाकी धर्मशाला के पास है। इसमें कुआ, बगीचा और कई इमारतें बनी हुई हैं। स्थान बड़ा सुन्दर और विशाल है। इसको कई इमारतें आदि भी यति ऋद्धिकरणजी ने बनवाई हैं। इस दादावाड़ीमें श्रीजिनदत्तसूरिजीके चरण सं० १८५१ और श्री जिनकुशलसूरिजीके चरण स० १८५०, श्रीजिनचंद्रसूरिजी के सं० १९४० एवं अन्य भी बहुत से यतियोंके चरणपादुके स्थापित है।

राजगढ़

यह सार्दूलपुर स्टेशन नामसे प्रसिद्ध है जोकि चूरूसे ३६ मील है। यहां ओसवालोंके १५० घर है। उपाश्रय से संलग्न श्रीसुपार्श्वनाथजी का मन्दिर है।

श्री सुपार्श्वनाथजी का मन्दिर

यह मन्दिर कब प्रतिष्ठित हुआ इसका कोई उल्लेख नहीं है परदादा साहबके चरण सं० १८६७ मिती वैशाख सुदि ३ के दिन प्रतिष्ठित हैं।

रिणी (तारानगर)

राजगढ़से लगभग २२ मील है, प्रतिदिन मोटर-बस जाती है। यह नगर बहुत प्राचीन है। यहां ओसवालोंके१७५ घर है। खरतरगच्छका उपाश्रय, जैन मन्दिर और दादावाड़ी है।

श्री शीतलनाथजी का मन्दिर

इस मन्दिरके निर्माणका कोई शिलालेख नहीं मिला। बीकानेर के ज्ञान भंडारके १ पत्रमें इसके निर्माणके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है :—सं० ६६६ मिती फागुण वदि १३ बुधवार पाछलै पुहर श्रीरिणीमें जैन रो देहरो तिण री नीव दीवी सेठ लखो खेतो छाजावत रो करायो बहू गोष्ण बेटी देवै हेमावत री देहरे री सोंप भोजग जैतो देवै रे नुंथी जसै देदावत रो बेटोराज जसवंत डाहलियै रो गणेश नीबावत रो राज पोगे देहरै रो चेजारो भीखो लगावह अहमद बरस मा देहरो प्रमाण चढ्यो देहरो श्रीशीतलनाथजी रो तेहनी उत्पत्त जाणवी।

गर्भगृहस्थित प्रतिमाएँ
शीतलनाथ जिनालय
रिणी तारानगर

श्री शीतलनाथ जिनालय
रिणी-तारानगर
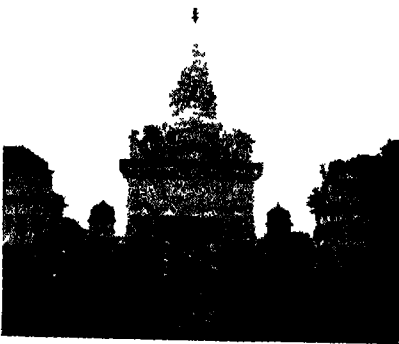
सिघीजी का देवसागर प्रासाद, सुजानगढ़
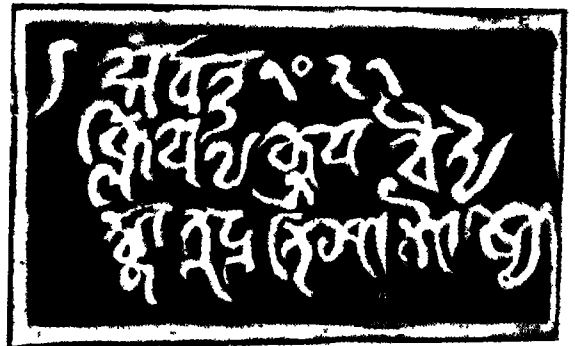
अभिलेख धातुमय पचतीर्थी अज्ञ लेखाङ्क २३१७
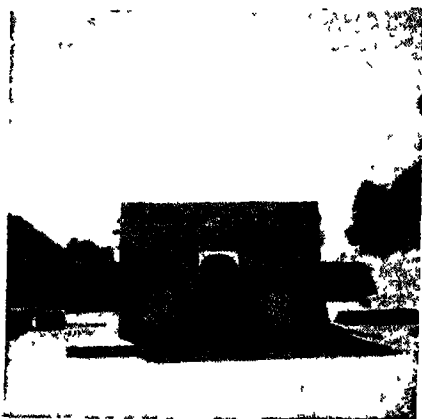
श्री ज्ञानसार समाधिमंदिर
(प० प्र० पृ० ३७)
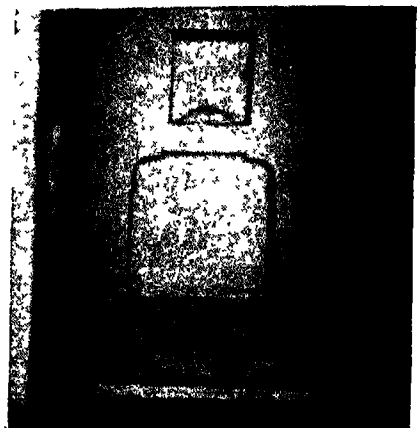
समाधिमंदिर का भीतरी दृश्य
(प० प्र० पृ० ३७)

श्री अभय जैन ग्रन्थालय बाहरी दृश्य

अभय जैन ग्रन्थालय भीतरी दृश्य

अभय जैन ग्रथालय, ग्रन्थो से भरी आलमारियाँ

बौद्ध चित्रपट (नाहटा कलाभवन)

मूलनायक श्री शीतलनाथजी सं० १०५८ में प्रतिष्ठित हैं। शासनदेवीकी मूर्त्तिपर सं० १०६५ का लेख है। मन्दिर बहुत सुदृढ़ विशाल, ऊँचे स्थानपर शिखरबद्ध बना हुआ है। बीकानेर राज्यके समस्त मंदिरोंमें यह प्राचीनतम है। हाल ही में यति पन्नालालजी की देखरेख में इसका जीर्णोद्धार हुआ है।

दादावाड़ी

यह गांव से करीब १ मील दूर है। यहां दादा श्रीजिनदत्तसूरिजीके चरण सं० १८६८ में प्रतिष्ठित है। यति माणिक्यमूर्त्तिजी के चरण सं० १८२५ और गुणनंदनके पादुके सं० १६१४ में प्रतिष्ठित हैं। सं० १६५२ में प्रतिष्ठित श्रीजिनकुशलसूरि पादुका, सं० १७८० की श्रीजिनसुख-सूरि पादुका, सं १७०६ की सुखलाभकी और सं० १६७२ हेमधर्मगणिकी पादुकाएं यहीं पर थीं जो अभी शीतलनाथजी के मन्दिर को भमती में रक्खी हुई हैं।

नौहर

यह सादूलपुर स्टेशनसे हनुमानगढ़ जानेवाली रेलवे लाइनका स्टेशन है। रिणीके बाद प्राचीन जैन मन्दिरोंमें इसकी गणनाकी जाती है। यहां श्रीपार्श्वनाथजीका मन्दिर है जिनके शिलापट्ट पर सं० १०८४का लेख है। श्रीरत्ननिधानकृत स्तवनमें सं० १६३३ में युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरिजीके यहांकी यात्रा करनेका उल्लेख है।

भादरा

यह भी नौहरसे २५ मील दूर है। सादूलपुरसे ४० मील है, यहां ओसवालोंके ३० घर हैं। जैन मन्दिर में पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी की प्रतिमाएं विराजमान है। एक उपाश्रय और पुस्तकालय भी है।

लूणकरणसर

यह बीकानेरसे ४१ मील दूर भटिण्डा जानेवाली रेलवेका स्टेशन है। यहां ओसवालोंके ६० घर है। १ मन्दिर, उपाश्रय और दादावाड़ी है। दादावाड़ीके चरण इस समय मन्दिरमें रखे हुए हैं।

सुपार्श्वनाथजीका मन्दिर

साधुकीर्तिजीके स्तवनानुसार सं० १६२०—२५ के लगभग यहां श्रीआदिनाथजीका मन्दिर था, पर वर्तमान मन्दिरके शिलापट्ट पर लेखमें वा० दयाचन्दके सदुपदेशसे सावनसुखा सुजाणमल, बुबाठाकुरसी, बाफणा महीसिंह, गोलछा फूसाराम और बोथरा हीरानंदने सं० १६०१ के प्रथम श्रावण वदि १४ को यह मन्दिर करवाया लिखा है। संभव है यह जीर्णोद्धारका लेख हो। सं० १६३६के श्रीजिनदत्तसूरिजी और श्रीजिनकुशलसूरिजीके चरण व अन्य कई पादुकाएं

मन्दिरमें रखी हुई हैं। इस समय यहां मूलनायक श्रीसुपार्श्वनाथजीकी प्रतिमा है, पता नहीं यह परिवर्तन कब हुआ।

कालू

यह गांव लूणकरणसरसे १२ मीलकी दूरी पर है बस व ऊंटों पर जाया जा सकता है। यहां पर ओसवालोंके ११० घर हैं। जैन मन्दिर और उपाश्रय भी है।

श्रीचन्द्रप्रभुजीका मन्दिर

इस मन्दिरका निर्माण काल अज्ञात है श्रीजिनदत्तसूरिजी और श्री जिनकुशलसूरिजीके चरण सं०१८६५ वैशाख बदि ७ को यहां पर श्री जिनहर्षसूरि प्रतिष्ठित हैं। गारबदेसरकी मूर्तियां भी एक चौबीसीको छोड़ कर यहां मंगवाई हुई हैं।

गारबदेसर

ये गांव कालूसे कुछ मील है। ओसवालोंके घर अब नहीं है इससे यहांके मन्दिरकी मूर्तियां कालूके मन्दिरमें ले आए। एक चतुर्विंशति पट्टक प्रतिमाकी पूजा वहांके श्रीमुरलीधरजीके मन्दिरमें होती है।

महाजन

यह भी भटिण्डा लाइन रेलवेका स्टेशन है। बीकानेरसे ७४ मील है गांवमें श्रीचन्द्रप्रभुजी का मन्दिर है। ओसवालोंके घर नहीं है। मन्दिर और इससे संलग्न जैन धर्मशाला है।

श्रीचन्द्रप्रभुजीका मंदिर—शिलापट्टके लेखानुसार उदयरंगजीके उपदेशसे श्री संघने सं० १८८१ मिती फागुन वदि २ शनिवारको बनवाकर इस मंदिरकी प्रतिष्ठा करवाई। मूलनायक जी पर कोई लेख नहीं है। दादा श्री जिनकुशलसूरिजीके चरणों पर १७७२ वैशाख सुदि ७ को महाजन संघके बनवाने और श्रीललितकीर्तिजीके प्रतिष्ठा करनेका उल्लेख है।

सूरतगढ़

यह भी भटिण्डा लाइनका स्टेशन है। और बीकानेर से ११३ मील है यहां ओसवालोंके २०—२२ घर हैं।

श्री पार्श्वनाथजीका मन्दिर

मूलनायकजीकी प्रतिमा सं० १६१५ मिती माघ शुक्ला २ को श्रीजिनसौभाग्यसूरिजी द्वारा प्रतिष्ठित है। इस मंदिरको सं० १६१६ वैशाख बदि ७ को अष्टान्हिका महोत्सव पूर्वक श्रीजिनहंस-सूरिजीने प्रतिष्ठित किया ऐसा खरतरगच्छ पट्टावलीमें लिखा है। मन्दिरमें लकड़ीकी पटड़ी पर जो लेख है उसमें वैशाख सुदि ७ तिथि लिखी है जो विशेष ठीक मालूम होती है।

हनुमानगढ़ (भटनेर)

यह भी उपर्युक्त रेलवेका स्टेशन है। बीकानेरसे सं० १४४ माइल है इसका पुराना नाम भटनेर (भट्टिनगर) है यहां बड़ गच्छकी एक शाखाकी गद्दी थी। यहां किलेके अन्दर एक प्राचीन मन्दिर है। यहांकी कई प्रतिमाएं बीकानेरके गंगा गोल्डन जुबिली म्यूजियममें रखी हुई हैं। कवि उदयहर्षके स्तवनानुसार सं० १७०७ में यहां श्री मुनिसुव्रत स्वामीका मन्दिर था। इस समय यहां श्री शान्तिनाथजीका मन्दिर है, मूलनायकजीकी सपरिकर प्रतिमा सं० १४८६ मि० मिगसर सुदि ११ को प्रतिष्ठित हैं, मन्दिरके पास ही उपाश्रय भग्न अवस्थामें पड़ा है। यहां ओसवालोंके केवल ७ ही घर है।

सतरहवीं शतीके वड़ गच्छीय सुकवि मालदेव के भटनेर आदिनाथादि ६ जिनस्तवन के अनुसार उस समय मूलनायक आदिनाथजी की सपरिकर मूर्त्ति थी। जिसमें दोनों ओर दो काउसग्गिया (कार्योत्सर्ग मुद्रा-खड़ी खड़गासन) मूर्त्ति थी। अन्य मूर्त्तियों में अजितनाथ, संभवनाथ, श्रेयांसनाथ, शान्तिनाथ एवं महावीर की थी। बीकानेर म्यूजियम में अजितनाथ, संभवनाथ व महावीर की प्रतिमाएँ सं० १५०१ में प्रतिष्ठित हैं। विशेष संभव है कि वे स्तवनोक्त ही हों। आदिनाथ की मूर्त्ति म्यूजियम में सं० १५०१ की व भटनेर में सं० १५६६ की है। संभवतः शान्तिनाथजी की मूर्त्ति भटनेर में अभी मूलनायक है वही हो पर श्रेयांसनाथजी की मूर्त्तिका पता नहीं चलता।

अब यहां उन स्थानों का परिचय दिया जा रहा है, जहां पूर्वकाल में जैन मन्दिर थे पर वर्त्तमान में नहीं रहे।

देसलसर

यह ग्राम देशनोक से १४ मील है। यहां मन्दिर अब भी विद्यमान है पर ओसवालों के घर न होनेसे यहां की प्रतिमाएं और पादुकायें नौखामंडीके नव्य निर्मित जैन मन्दिर में प्रतिष्ठित की गई है।

सारूँडा

यह स्थान नोखामंडी से १०-१२ मील है। सं० १६१६ और १६४४ की शत्रुंजय चैत्य परिपाटी में श्री ऋषभदेव भगवान के मन्दिर होनेका उल्लेख पाया जाता है। पर वर्त्तमान में उसके कुछ भग्नावशेष ही रहे हैं।

पूगल

यह बहुत पुराना स्थान है। सं० १६६६ के लगभग कल्याणलाभके शिष्य कमलकीर्ति और सं० १७०७ में ज्ञानहर्ष विरचित स्तवनों से स्पष्ट है कि यहां श्री अजितनाथस्वामी का मन्दिर था। पर इस समय यहां कोई मन्दिर नहीं है।

ददरेवा

यह गांव राजगढ़ से रिणी जाते हुये मार्गमें आता है। वाचक श्री गुणविनय कृतस्तवन के अनुसार सतरहवीं शताब्दी में यहाँ श्री शान्तिनाथ भगवान का मन्दिर था। इस समय यहाँ मन्दिर का नामोनिशान भी नहीं है।

बीकानेर के जैनमन्दिरों को राज्यकी ओर से सहायता

बीकानेर राज्यकी देवस्थान कमेटी से पूजनादि के लिये निम्नोक्त रकम मासिक सहायता मिलती है।

यह सूची पुरानी है, वर्तमान में सहायता की रकममें वृद्धि हो गयी है।

१—नापासर* शान्तिनाथजी	१)
१ रतनगढ़ जैनमन्दिर	|||=)
दादाजी	१||≡)
३—चूरू शांतिनाथजी	१|||)
दादाजी	१≡)
४—राजगढ़ जैनमन्दिर	२|||≡)
५—रिणी× शीतलनाथजी	२||≡)
दादाजी	||–)
६—सुजानगढ़ ऋषभदेवजी	२|||≡)
७—सरदारशहर पार्श्वनाथजी	२|||≡)
पार्श्वनाथजी नया मन्दिर	२||≡)
दादाजी	१≡)
८—उदरामसर दादाजी	२)
९—देशनोक मन्दिर	१)
१०—लूणकरणसर पार्श्वनाथजी	२|||≡)
११—सूरतगढ़ पार्श्वनाथजी	२|–)
१२—ऋषभदेवजी	१≡
१३—हनुमानगढ़	२|||≡)
१४—नौहर	२|–)
१५—भादरा	१|||)

रजु दफ्तर   छाप   श्री रामजी

* श्री दीवान वचनात् गां० नापासर री जगान रा वा रुखवाली री भाछरा हुवाल्दारां जोग। तीथा श्री जी रोमन्दिर जैनरो गाँ० नापासरमें छै तैरी सेवा पूजा सेवग खड़गो करै छै तै नै केसरचनण धूपरा मा०१ रु० २) अखरे रुपया दोय कर दिया है सुजगान रो हुवाल्दार हुवे सो १) वा रुखवालीरी भाछ रो हुवाल्दार हुवे सु १) चलू दिया जावजो द: अचारज ठाकरसी सं० १९०३ मी० फागण वदि ९।

× श्री बीकानेर रा मांडहिया लिखावतु रिणी रा मांडहिया जोग तथा पूज श्री जिनसुखसूरिजी री छतडी पावकारे पूजा नु टका १५। अखरे पन्द्रे चलु थितोया देजो म्हे थानु मुकाते मां मुजरे भरदेसां सं० १७८३ मगसर सुद ४ हुता चलु दे जाई उपासरे भटारकांरे देजो।

जैन उपाश्रयों का इतिहास

श्रावक समाज के लिए जिस प्रकार देवरूप से जैन तीर्थंकर पूज्य हैं उसी प्रकार गुरुरूप जैन साधु भी तद्वत् उपास्य हैं। अतः बीकानेर बसने के साथ जैन श्रावकों की बीकानेर में बस्ती बढती गई तब उनके धार्मिक अनुष्ठानों को सम्पन्न कराने वाले और धर्मोपदेष्टा जैन मुनियों का आना जाना भी प्रचुरता से होने लगा। और उनके ठहरने व श्रावकों को धर्म ध्यान करने के लिए उचित स्थान की आवश्यकता ने ही पौषधशाला या उपाश्रयों को जन्म दिया। इन धर्मस्थानोंका मन्दिरों के निकटवर्त्ती होनेसे विशेष सुविधा रहती है इसलिये श्री चिन्तामणिजी और महावीरजी जो कि १३ और १४ गुवाड़ के प्रमुख मन्दिर हैं, उनके पार्श्ववर्त्ती पौषधशालाएँ बनवाई गईं। उस समय जैन साधुओंके आचार विचारोंमें कुछ शिथिलता प्रविष्ट हो चुकी थी। अतः सं० १६०६ में उ० कनकतिलक, भावहर्ष आदि खरतर गच्छीय मुनियों ने बीकानेरमें क्रियोद्धार किया और धर्मप्रेमी संग्रामसिंहजी बच्छावत की विज्ञप्ति से सं० १६१३ में श्रीजिनचन्द्र सूरिजी बीकानेर पधारे। आपश्री ने यहाँ आनेके अनन्तर क्रियोद्धार कर चारित्र पालन कर सकने वाले मुनियों को ही अपना साथी बनाया अवशेष यति लोग इनसे भिन्न महात्मा के नामसे प्रसिद्ध हो गए। पुराने उपाश्रय में वे लोग रहते थे इसलिए मंत्रीश्वर ने अपनी माताके पुण्य वृद्धिके लिए नवीन बड़ी पौषधशाला निर्माण करवायी जो अभी बड़े उपाश्रय के नामसे प्रसिद्ध है। वह पौषधशाला सुविहित साधुओं के धर्म ध्यान करने के लिए और इसके पास ही संघने साध्वियों के लिए उपाश्रय बनवाया * इसी प्रकार समय-समय पर कंवलागच्छ, पायचंदगच्छ, व लुंकागच्छ व तपागच्छ के उपाश्रय बनवाये। १६ वीं शतीमें फिर यतियों में शिथिलाचार बढ़ गया और विहार की मर्यादा भी शिथिल हो गई जो यति विशेष कर बीकानेर में रहने लगे उन्होंने अपने अपने उपाश्रय भी अलग बनवा लिये क्योंकि खरतर गच्छमें यतियों की संख्या उस समय सैकड़ों पर थी अतः पुराने उपाश्रय में इनकी भीड़ लगी रहती थी, अत जिन्हें वहाँ रहने में असुविधा प्रतीत हुई या जिन : पास धन इकट्ठा हो गया अथवा राजदरबार में उनकी मान्यता होनेसे राजकी ओरसे जमीन मिल गई उन्होंने स्वतंत्र उपाश्रय बनवा लिए। उपाश्रयों के लेखोंसे प्रमाणित है कि इस शताब्दी में बहुत से नवीन उपाश्रय बनकर उनकी संख्या में वृद्धि हुई। अब समस्त उपाश्रयों क संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

बड़ा उपासरा

यह उपाश्रय रांगड़ीके चौकमें है। यह स्थान बहुत विशाल बना हुआ है। इसमें सैकड़ों यति साधु चातुर्मास करते थे। इस उपाश्रयके श्रीपूज्यजी वृहद् भट्टारक कहलाते हैं। उनके अनु-

---

* इस समय प्राचीन उपाश्रय भी सुविहित साधुओं के व्यवहार में आता था, क्योंकि समयसुन्दरजी ने सं १६७४ के लगभग जब बादशाह जहांगीर का फरमान श्रीजिनसिंहसूरिजी को बुलाने के लिए आया तब आचार्यश्रीके उसी चिन्तामणिजी के मन्दिर से संलग्न उपाश्रय में विराजमान होनेका उल्लेख किया है।

यायियों की संख्या बीकानेर और बीकानेरके गांवोंमें सबसे अधिक थी। बीकानेर रियासतके प्रायः सभी गांवोंमें यहांकी गद्दीके श्रीपूज्यजी के आज्ञानुयायी यति लोग विचरते रहते थे अर्थात् सब तरहसे यह स्थान अपनी महानता के कारण ही यह बड़ा उपासरा सबसे अधिक देश-देशान्तरोंमें प्रसिद्धि प्राप्त है। इस उपाश्रय के निर्माण के सम्बन्ध में हम आगे लिख चुके हैं कि यह सं० १६१३ के लगभग मंत्रीश्वर संग्रामसिंह ने अपनी माताके पुण्यार्थ बनवाया था*। इस उपाश्रयके सम्बन्धमें सं० १७०५ का परवाना हमारे संग्रहमें है, जिसकी नकल इस प्रकार है :—

सही—

स्वस्ति श्री महाराजाधिराजा महाराजा श्री करणसिंह जी वचनायते खवास गोपाळा जोग सुपरसाद बांचजो तथा उपासरो बड़ो भटारकी महाजना रो छै सु भटारकिया—(नै) दीन छै० सु० खोलह देजो० महाजन भटारकी नु खग—य छै संवत् १७०५ वैसख वद ५ श्री अवरंगाबाद।

इस उपाश्रयमें यतिवर्य्य हितवल्लभ जी (हिमतू जी) की प्रेरणासे कई यतियोंके हस्तलिखित ग्रन्थोंके संग्रहरूप बृहद् ज्ञानभडार स्थापित हुआ। यद्यपि इससे पहिले सतरहवीं शतीमें भी विक्रमपुर ज्ञानकोष का उल्लेख पाया जाता है पर अब वह नहीं है। इस भंडारके अतिरिक्त श्रीपूज्यजी का संग्रह भी महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय है जिसका परिचय ज्ञानभंडारके प्रकरणमें दिया गया है। इस उपाश्रय में वृहत्खरतर गच्छीय श्रीपूज्यों की गद्दी है वर्त्तमान में भट्टारक श्रीजिनविजयेन्द्रसूरिजी श्रीपूज्य हैं। इसमें १२ गुवाड़ की पंचायती व कई मन्दिरों की वस्तुएं भी रहती हैं। श्री पूज्यजी का वर्त्तमान तरून व उपाश्रय के सन्मुख का हिस्सा श्रीमद् ज्ञानसार जी के सदुपदेश से जैन-संघ ने बनवाया था।

साध्वियोंका उपासरा

यह बड़े उपाश्रय के पास की गलीमें साध्वियोंके ठहरने व श्राविकाओं के धर्म-ध्यान करने के लिये संघ ने बनवाया था अभी यहां कई खण हैं जिनमें भट्टारक और आचार्य खरतर शाखा की जतणियें रहती हैं।

खरतराचार्य गच्छका उपासरा

वि० सं० १६८६ में श्रीजिनसिंहसूरिजी के पट्टधर भट्टारक श्री जिनराजसूरि व आचार्य श्रीजिनसागरसूरि किसी कारणवश अलग अलग हो गए। तबसे श्री जिनसागरसूरिजी का समुदाय खरतराचार्य गच्छ कहलाने लगा। यह उपाश्रय बड़े उपाश्रय के ठीक पीछे नाहटों की गुवाड़ में है संभवत उपर्युक्त गच्छ भेद होनेके कुछ समय बाद ही इसकी स्थापना हुई होगी पर इसमें लगे हुए शिलालेख में यति मलूकचन्द जी के उपदेश से आचार्य गच्छीय संघ द्वारा यह

---

* पौषधशाला विपुला विनिर्मिता येन भूरि भाग्येन।
मातुः पुन्यार्थं यन्माता मान्या सु धन्यानाम्।। २५४।।

[कर्मचन्द मन्त्रिवंश प्रबन्ध]

पौषधशाला सं० १८४५ भाद्रवा वदि ८ को बनवाने का लिखा है। जो कि उपाश्रय के वर्त्तमान रूपमें निर्माण होनेका सूचक होगा। खरतराचार्य शाखाके श्री पूज्य श्री जिनचन्द्रसूरिका देहान्त हो गया है। इस उपाश्रय में भी एक अच्छा ज्ञान भंडार है।

श्री जैनलक्ष्मी मोहनशाला

यह भी रांगड़ी के चौक में। सं० १८२२ में यति लक्ष्मीचन्द्र जी ने यह मकान बनवाया होगा। इस में श्री जिनरत्नसूरिजी के पट्टधर श्री जिनचन्द्रसूरिजी के शिष्य उ० उदयतिलकजी की परम्परा के उ० जयचन्द्रजी के शिष्य पालचन्द अभी रहते हैं। इनके प्रगुरु मोहनलाल जी ने सं० १९५१ विजयदशमी को श्री जैन लक्ष्मी मोहन शाला नाम से पुस्तकालय स्थापित किया। इनके ज्ञानभंडार में हस्तलिखित ग्रन्थों का अच्छा संग्रह है।

श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि खरतरगच्छ धर्मशाला

यह भी रांगड़ी के चौकमें है। श्रीजिनकृपाचन्द्रसूरिजी कीर्तिरत्नसूरि शाखामें नामाङ्कित विद्वान हो गए हैं जिनके शिष्य शिष्याएं अब भी सर्वत्र विचर कर शासन सेवा कर रहे हैं। श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के प्रगुरु सुमतिसोम जी के गुरू सुमतिविशाल जी ने सं० १९२४ ज्येष्ठ सुदि ५ को यह उपाश्रय बनवाया। श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी सं० १९४५ में क्रियोद्धार करके सं० १९५७ में पुनः बीकानेर आए और अपने इस उपाश्रय को मय अन्य दो उपासरों (जिनमेंसे एक इसके संलग्न और दूसरा इसके सामने है) ज्ञानभंडार, सेढूजी का मन्दिर, नाल की शाला इत्यादि अपनी समस्त जायदाद को "व्यवस्थापत्र" बनवा कर खरतर गच्छ संघ को सौंप दी। सं १९८४ में श्री जिनकृपाचन्द्रसूरिजी के पुनः पधारने पर निकटवर्ती उपाश्रय का नवीन निर्माण और मूल उपाश्रय का जीर्णोद्धार सं० १९८६ में लगभग ६०००) रुपये खरच कर श्री संघने करवाया जिसके सारे कामकी देखरेख हमारे पूज्य स्व० श्री शंकरदान जी नाहटा ने बड़े लगनसे की थी। खेद है कि उपासरे का ज्ञानभंडार सूरिजी के यति-शिष्य तिलोकचन्द जी ने जिन्हें कि बड़े विश्वास के साथ सूरिजी ने व्यवस्थापक बनाया था, बेच डाला इस उपाश्रय से संलग्न एक सेवग के मकान को खरीद कर हमारी ओर से उपाश्रय में दिया गया है। पूज्य श्रीयुत शुभैराज जी नाहटा ने सतत् परिश्रमसे एक विशाल व्याख्यान हाल का निर्माण हुआ है उ० श्री सुखसागर जी और साध्वीजी माहमाश्री जी के ग्रन्थों की अलमारियाँ यहाँ मंगवाकर ज्ञानभंडार की पुनर्स्थापना की गयी है।

श्री अनोपचन्द्रजी यति का उपासरा

यह उपर्युक्त श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि खरतर गच्छ धर्मशाला के सामने है। इसका ३/४ हिस्सा उपर्युक्त धर्मशाला के तालुके हैं व १/४ हिस्सा यति अनोपचन्द्रजी का था जिसमें उनके शिष्य प्यारेलाल यति रहते हैं। इस से संलग्न इसी शाखा के यति रामधनजी का उपासरा है।

महो० रामलालजी का उपासरा

क्षेम शाखाके महो० रामलालजी इस जमाने के प्रसिद्ध वैद्यों में थे उन्होंने वैद्यक द्वारा अच्छी सम्पत्ति अर्जन कर यह उपाश्रय बनवाया। अभी इसमें उनके प्रशिष्य बालचन्द्रजी रहते हैं।

श्री सुगनजी का उपासरा

यह भी रांघड़ी के चौक के पास है। उपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी उन्नीसवीं शती के बड़े गीतार्थ एवं विद्वान थे, अपने गुरु अमृतधर्मजी के साथ इन्होंने क्रियोद्धार किया था। आपके उपदेश से श्री संघ ने सं० १८५८ में यह पौषधशाला बनवाई, इसमें उन्होंने अपना ज्ञान-भण्डार स्थापित किया जिसका लेख इस प्रकार है :—

"श्री सिद्धचक्राय नमः श्री पुण्डरीकादि गौतम स्वामी प्रमुख गणधरेभ्यो नमः श्री बृहत्खरतरगणाधीश्वर भट्टारक श्री जिनभक्तिसूरि शिष्य प्रीतिसागर गणि शिष्य वाचनाचार्य संविग्न श्री मदमृतधर्म गणि शिष्योपाध्याय श्री क्षमाकल्याण गणिनामुपदेशात् श्री संघेन पुण्यार्थं श्री बीकानेर नगरे इयं पौषधशाला कारिता सं० १८५८ इस पौषधशाला मांहें शुद्ध समाचारी धारक संवेगी साधु-साध्वी श्रावक-श्राविका धर्म ध्यान करें और कोई उजर करण पावै नहीं सही सही ।। लिखितं उपाध्याय श्रीक्षमाकल्याण गणिभिः सं १८६१ मिती मार्गशीर्ष सुदि ३ दिने संघ समक्षम्।

उपाध्याय श्री क्षमाकल्याण गणि स्वनिश्रा को पुस्तक भण्डार स्थापन कियौ इसकी विगति लिखें है। भण्डार कौ पुस्तक कोई चोर लेवे अथवा बेचै सा देव गुरु धर्म कौ विराधक होय भवो भव महा दुखी होय"।

उ० श्री क्षमाकल्याणजी के प्रशिष्य श्री सुगनजी अच्छे कवि हुए हैं जिनके रचित बहुतसी पूजाएं प्रसिद्ध है उन्हीं के नामसे यह सुगनजी का उपासरा कहलाता है। पीछे से इससे संलग्न उपाश्रय को एक यति से खरीद कर शामिल कर लिया गया है। उपाश्रय के उपर अजितनाथजी का देहरासर और नीचे क्षमाकल्याण-गुरु-मन्दिर और ज्ञानभण्डार है। इस उपाश्रय का हाल ही में सुन्दर जीर्णोद्धार हुआ है।

बौरों की सेरी का उपासरा

रांगड़ीके चौक के निकटवर्त्ती बोहरों की सेरीमें होने से यह "बौरों सेरी का उपासरा" कहलाता है। यह उपाश्रय क्षमाकल्याणजी की शिष्याओं एवं श्राविकाओं के धर्मध्यान करनेके लिए बनवाया गया था।

छत्तीबाई का उपासरा

यह नाहटों की गुवाड़ में श्री सुपार्श्वनाथजी के मन्दिर से संलग्न है। इसे छत्तीबाई ने बनवाया इससे यह छत्तीबाई का उपासरा कहलाता है। यहां कभी कभी साध्वियों का चौमासा होता है और बाईयां धर्मध्यान करती हैं।
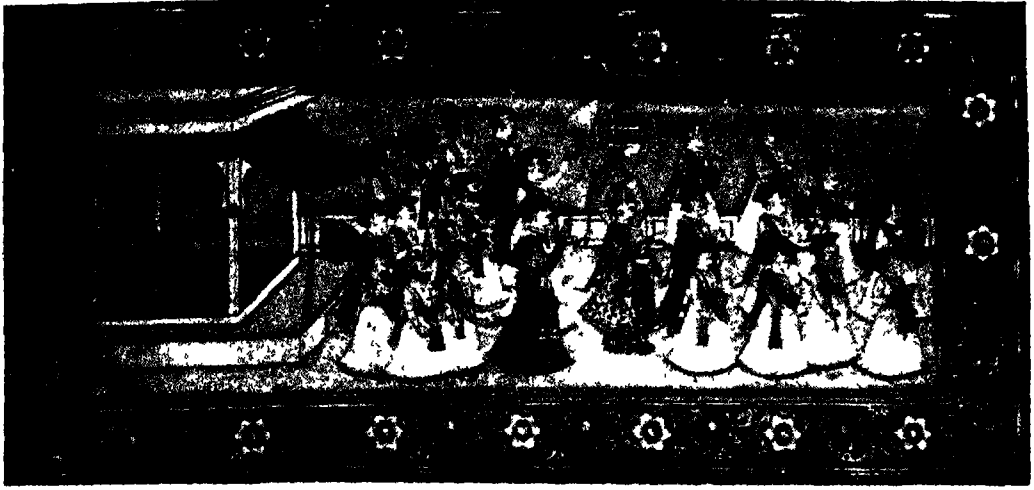
कल्पसूत्रके चित्र—सिद्धार्थ सभा

त्रिशला (कक्षमें) एवं स्वप्न पाठक